।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

# वैदिक-वाणी

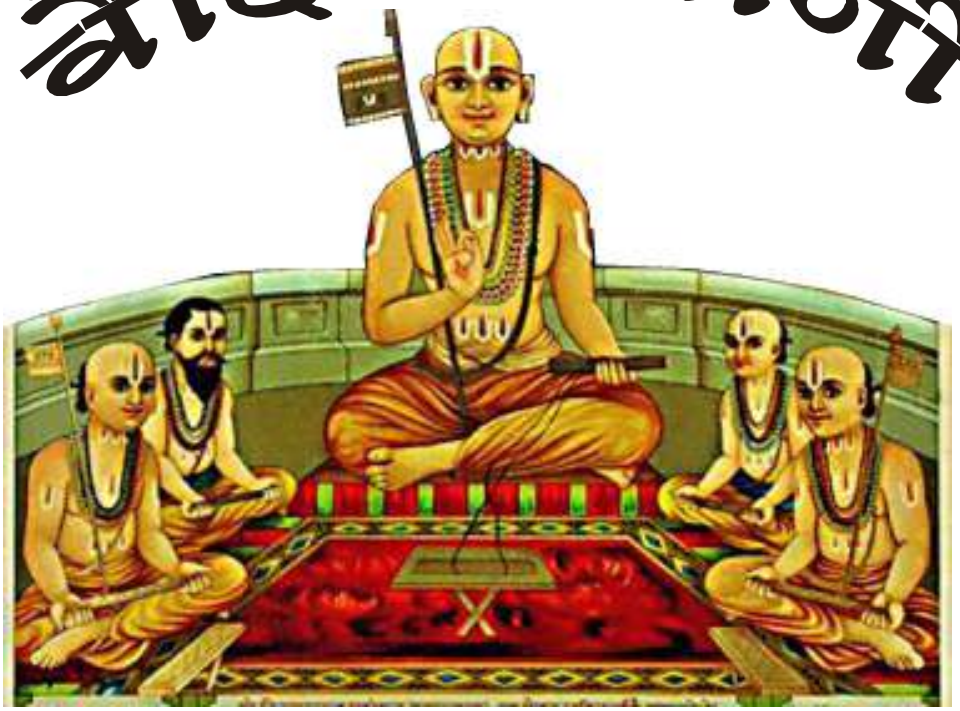


| वर्ष- २४<br>सन्- २०११ ई० | श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद्<br>हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार) | अंक- १<br>रामानुजाब्द<br>त्रैमासिक प्रकाशन |
|---|---|---|


**स्फुरत्किरीटाङ्गदहारकण्ठिकामणीन्द्रकाञ्चीगुणनूपुरादिभिः।**
**रथाङ्गशङ्खासिगदाधनुर्वरैः लसत्तुलस्या वनमालयोज्ज्वलम् ।।**

अर्थात् आप दीप्तिमान मुकुट, भुजाबन्द, कण्ठिका-हार, मणिश्रेष्ठ, कमरबन्द, नूपुर आदि और चक्र, शंख, खड्ग, श्रेष्ठ धनुष तथा सुन्दर तुलसीपत्र सहित वनफूलों की माला से सुशोभित हो रहे हैं।

# विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

*************


| क्रम सं० | विषय | पृ०सं० |
|---|---|---|
| १. | वैदिक-वाणी | ३ |
| २. | भगवान श्रीराम का प्रादुर्भाव | ४ |
| ३. | धर्म और विज्ञान | ८ |
| ४. | पुनः अयोध्या से लङ्का गये श्रीराम | ९ |
| ५. | भगवान ने सत्कर्म का पालन किया है लोक-शिक्षार्थ | ११ |
| ६. | अनन्य भक्ति से भगवत्प्राप्ति | १२ |
| ७. | इन्द्र की क्रूरता से विरोचन को लाभ | १६ |
| ८. | दक्षिण भारत के सन्त आलवार | १७ |
| ९. | वामन के कृपापात्र बलि | १९ |
| १०. | दिव्योपदेश | २० |
| ११. | गुरु-शिष्य संवाद | २२ |
| १२. | मातृ देवो भव, पितृ देवो भव | २५ |
| १३. | आसुरी सम्पदा और भगवत्शरणागति | २७ |
| १४. | हिरण्यकशिपु-प्रह्लाद संवाद | २८ |
| १५. | भगवान की स्तुति | ३० |
| १६. | कालसर्प योग के ताण्डव की सत्यता | ३१ |
| १७. | सरौती-महायज्ञ का आँखों देखा हाल | ३५ |


## नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) २५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ४०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

**—सम्पादक**

# वैदिक-वाणी

**नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ।**
**नारायणः परोज्योतिरात्मा नारायणः परः ।।**

भगवान श्रीमन्नारायण परम पुरुष हैं। वे निर्दोष एवं कल्याण गुणाकार होने से जीव और जड़ अर्थात् स्वेतर संसार के सभी वस्तुओं से विलक्षण हैं। भगवान श्रीमन्नारायण के चरणकमलों का ध्यान, अर्चन, कीर्तन, स्मरण एवं प्रणाम करना जीवों का परम कर्त्तव्य है। मानव जीवन की मूल उपयोगिता यही है।

ध्यान मन से किया जाता है, अतः यह मानस कर्म है। पवित्र मन से भगवान को ध्यान करने पर उनका स्वरूप हृदय में आता है। भगवान के नाम एवं गुणों का कीर्तन वचन से किया जाता है, इसलिए यह वाचिक कर्म है। अर्चन प्रणाम आदि कार्य शरीर से किये जाते हैं, अतः ये कायिक कर्म हैं।

भगवन्निमित जो कर्म किये जाते हैं, वे सांसारिक कष्टों से मुक्त करते हैं। नारायण के बिना कष्ट दूर करने वाला दूसरा कोई नहीं है।

कष्ट तीन प्रकार के होते हैं। मानस में स्वामी जी ने कहा है—

**दैहिक दैविक भौतिक तापा ।**
**रामराज्य काहहु नहीं व्यापा ।।**

अर्थात् भगवान से संरक्षित होने पर प्राणी किसी भी संताप से संतप्त नहीं होता। आर्ष-ग्रन्थों में इसका हजारों उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं।

परम विपत्ति में पड़ने पर गजेन्द्र ने प्रेमपूर्वक नारायण का ही स्मरण एवं कीर्तन किया था, उससे नारायण प्रसन्न होकर गजेन्द्र के पास आ गये और वे अपने चक्र से ग्राह को मारकर गजेन्द्र का उद्धार कर दिये। भगवान गजेन्द्र को अपना पार्षद बना लिए—

**गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।**
**प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ।।**
(भा० ८।४।६)

ध्रुव ने प्रेमपूर्वक छः मास तक नारायण का ध्यान एवं कीर्तन कर उनका दर्शन कर लिया था। नारायण के कृपा से ध्रुव ने छत्तीस हजार वर्ष तक इस लोक में राज्य का सुख भोगकर विमान से अपनी माता के साथ अक्षयपद (ध्रुवलोक) प्राप्त किया।

विभीषण ने नारायण स्वरूप भगवान श्रीराम का शरणागत होकर लङ्का का अचल राज्य प्राप्त किया। इसलिए तत्त्वदर्शी पूर्वाचार्यों ने कहा है कि श्रीपति एक नारायण ही भक्तों के सेब्य हैं।

**सेब्यः श्रीपतिरेकएव जगतामेतेऽभवन्साक्षिणः ।**
**प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः ।।**

अर्थात् प्रह्लाद, ध्रुव, गजेन्द्र, विभीषण आदि भक्त इसके साक्षी हैं। इसलिए यह प्रमाण प्रस्तुत है—

**आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।**
**इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।।**

अतः सभी शास्त्रों के बार-बार गहन अध्ययन-मनन के उपरान्त यह सुविचार निष्पन्न होता है कि संसार में एक मात्र नारायण ही सभी प्राणियों के लिए ध्येय हैं, गेय हैं, दर्शनीय हैं, वन्दनीय हैं।

# भगवान श्रीराम का प्रादुर्भाव

**श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गति,**
**रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः ।**
**रामात् नस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे,**
**रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ।।**

विश्व के राष्ट्रों में भारत वर्ष एक धर्म प्रधान राष्ट्र है। विश्वनियन्ता परमात्मा विराट पुरुष का समस्त ब्रह्माण्ड शरीर है। भारतवर्ष में यह मुख्य दो स्थल है–अयोध्या और मथुरा। ये दोनों विराट पुरुष के हृदय हैं। अयोध्या का निर्माण मनु ने किया था। जहाँ अर्चारूप में भगवान विष्णु की उपासना होती थी, जो रङ्गनाथ के नाम से प्रसिद्ध थे। कश्यप और अदिति ने तपस्या करके भगवान विष्णु को प्रसन्न किया था। उन्होंने वरदान माँगा था कि आपके समान हमें पुत्र चाहिए। भगवान विष्णु के समान या उनसे अधिक कोई शक्तिशाली है ही नहीं— ***'न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो'*** इसलिए भगवान विष्णु ने स्वयं पुत्र होने का निर्णय ले लिया। कश्यप ही मनु वंश में अज के पुत्र राजा दशरथ हुए। वे महापराक्रमी, विद्वान्, जितेन्द्रिय एवं ज्ञानी थे।

**अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ ।**
**बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ।।**
**धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी ।**
**हृदयँ भगति मति सारँग पानी ।।**

उनके कार्य-कलाप से तीनों लोकों में उनकी ख्याति थी— ***'त्रिषु लोकेषु विश्रुतः' ।*** वे अतिरथि थे। अदिति कौसल देशीय राजा की कन्या हुई जिसका नाम कौसल्या था। वह राजा दशरथ की पत्नी थी। राजा दशरथ चक्रवर्ती राजा थे, वे समस्त भूमण्डल पर राज्य करते थे। उनकी और दो रानियाँ प्रसिद्ध थीं–सुमित्रा और कैकयी। चक्रवर्ती राजा दशरथ ने साठ हजार वर्ष तक भूमण्डल पर निष्कण्टक राज्य किया।

जगत् में तीन तृष्णायें प्रसिद्ध हैं–धन, नारी और पुत्र की। राजा दशरथ धन और नारी से सन्तुष्ट थे, किन्तु उन्हें पुत्र नहीं था। साठ हजार वर्ष राज्य करने के पश्चात् उन्हें पुत्र की चिन्ता हुई। उन्होंने श्रीवसिष्ठ आदि पुरोहितों एवं मन्त्रियों के समक्ष कहा कि मैं पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ करना चाहता हूँ। सभी लोगों ने सहर्ष उनका अनुमोदन किया। उस समय सुमन्त जी ने राजा को एकान्त में ले जाकर कहा कि मैं एक बार सनकादियों को पौराणिक कथा कहते हुए सुना हूँ, उन्होंने कहा था कि अयोध्याधिपति राजा दशरथ अङ्गदेश के राजा रोमपाद के जामाता ऋष्यशृङ्ग को सपत्निक अयोध्या में बुलाकर यज्ञ करवायेंगे। उससे चार पुत्र प्राप्त होंगे। सुमन्त के वचन से राजा दशरथ को बहुत प्रसन्नता हूई। वे कौसल्या को साथ लेकर अङ्गदेश में गये। वहाँ के राजा रोमपाद से कहकर सपत्निक ऋष्यशृङ्ग को अयोध्या ले आये।

तदनन्तर सरयू के उत्तर तट पर यज्ञशाला बनी। राजा दशरथ ने प्रथम वसिष्ठ के आचार्यत्व में अश्वमेध यज्ञ किया। उससे राजा के पुत्र प्रतिबन्धक योग नष्ट हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने ऋष्यशृङ्ग से पुत्रेष्टि यज्ञ कराने की प्रार्थना की, पुत्रेष्टि यज्ञ साक्षात् नारायण की उपासना प्रधान है। अथर्ववेद में ही पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन किया गया है। ऋष्यशृङ्ग अथर्ववेदी थे। उन्होंने ध्यान लगाकर निश्चय कर लिया कि पुत्रेष्टि यज्ञ से राजा को पुत्र प्राप्त होंगे। अत एव उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञ के अवसर पर ब्रह्मा, इन्द्रादि देव अपने भाग ग्रहण करने के लिए आ गए। देवताओं में रावण के

उपद्रव से अन्तर्वेदना थी, वे लोग ब्रह्मा को कोश रहे थे कि आप रावण को वरदान देकर सारे प्राणियों को कष्ट दे रहे हैं। उसी समय भगवान विष्णु के लिए आवाहन मन्त्र उच्चारण किया गया।

परमदयालु भक्तवत्सल भगवान विष्णु जो विश्व के अणु-अणु में व्याप्त हैं, सर्वदर्शी सर्वान्तर्यामी हैं, जो भक्तों के द्वारा रक्षा की अपेक्षा करने पर उनकी रक्षा करने के लिए अविलम्ब आ जाते हैं। वे यहाँ साधुओं का परित्राण, दुष्टों का विनाश, धर्म की स्थापना तथा यज्ञ में आराधना करने वाले राजा दशरथ के मनोरथ को पूर्ण करने की इच्छा से अपने चक्रादि आयुधों के साथ सभी देवों के समक्ष प्रकट हो गये।

**एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरूपयातो महाद्युतिः ।**
**शङ्खचक्रगदापाणि पीतवासा जगत्पतिः ।।**

यद्यपि सर्वेश्वर भगवान विष्णु सर्वज्ञ एवं प्राणियों पर करुणा करने वाले हैं। संसार में कहाँ कौन किसको कष्ट दे रहा है ये सब जातने भी हैं; तथापि भक्तों द्वारा रक्षा की अपेक्षा किये बिना वे नहीं आते हैं।

**सर्वज्ञोऽपि विश्वेशः सदा कारुणिकोऽपि सन् ।**
**संसारतन्त्रवाहित्वात् रक्ष्याऽपेक्षां प्रतीक्षते ।।**

भक्तों पर उनकी कृपा तभी होती है, जब भक्त उनकी अपेक्षा करता है। संसार तन्त्र को चलाने के लिए भगवान अपेक्षा रूप नियम का पालन करते हैं।

यज्ञ में उपस्थित भगवान विष्णु को सभी देवताओं ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर देवताओं ने भगवान का स्तवन करके उनसे कहा कि हे सर्वेश्वर! आप स्वयं शरणागतों के रक्षण में तत्पर रहते हैं। अयोध्या के राजा दशरथ धर्मज्ञ, उदार एवं परम तेजस्वी हैं। उनकी तीन रानियाँ हैं। जो ह्री, श्रीं और कीर्ति–ये तीन यक्ष कन्या के समान हैं। हे विष्णो! आप राजा दशरथ के तीनों रानियों के गर्भ से चार स्वरूप धारण कर उनके पुत्र रूप में अवतार ग्रहण करें।

**विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ।**
**तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ।**
**अवध्यं देवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ।।**
(वा०रा०, बा०का०–१५।२१-२२)

देवताओं की प्रार्थना सुनकर भगवान विष्णु ने आश्वासन दिया कि तुमलोग भय त्याग दो। तुम्हारे हित के लिए मैं मानव रूप धारण कर रावण को पुत्र, पौत्र, मन्त्री, बन्धु-बान्धवों सहित युद्ध में मारकर ग्यारह हजार वर्षों तक पृथ्वी का पालन करता हुआ मनुष्य लोक में वास करूँगा।

**भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधिरावणम् ।**
**सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ।।**
**हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम् ।**
**दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।।**
**वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम् ।।**

तदनन्तर भगवान विष्णु देवताओं से पूजित होकर अन्तर्धान हो गये। पुत्रेष्टि यज्ञ हो रहा था। अग्निकुण्ड में आहुतियाँ डाली जा रही थीं। उसी समय अग्निदेव एक पुरुष रूप में प्रकट हुए उनके हाथ में स्वर्ण की परातें रखी थी, वह चाँदी के ढक्कन से ढ़की हुई थीं। अग्निदेव ने राजा दशरथ को यह कहकर खीर दिया कि यह देव निर्मित पायस सन्तान देने वाला तथा आरोग्य और धन-दायक है। राजा दशरथ ने अग्निदेव के हाथ से खीर का पूर्ण पात्र लेकर अपने शिर पर रखा और अग्निदेव को प्रणाम करके उनकी परिक्रमा की। तदनन्तर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये।

राजा दशरथ हर्षोल्लास के साथ महल में गये और सभी रानियों को बुलाकर खीर का विभाजन करने लगे। उन्होंने खीर का आधा भाग ज्येष्ठ

पत्नी होने के कारण कौसल्या को दिया। पुनः आधा को दो भाग करके एक भाग (चतुर्थांश) मध्यमा पत्नी सुमित्रा को दिया और शेष चतुर्थांश खीर को दो भाग करके एक भाग (अष्टमांश) तृतीय पत्नी कैकेयी को दिया। शेष जो अष्टमांश था, उसे पुनः सुमित्रा को दे दिया।

सब के चित्त में अत्यन्त आनन्द छा गया, खीर खाकर सभी रानियाँ गर्भवती हुईं, रानियों के गर्भ-धारण में पति के शुक्र-शोणित कारण नहीं है, प्रत्युत पायस का परिणामस्वरूप गर्भधारण हुआ है। पायस-भक्षण के बाद ही तीनों रानियाँ गर्भवती हुई हैं। पायस भगवान का षड्गुण्य विग्रह है, रानियों के गर्भ की वृद्धि अन्न-पानादि से नहीं हुई है, अपितु भगवान की इच्छा से हुई है।

पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त होने पर बारहवें मास में चैत्र शुक्ल पक्ष नवमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में सर्वलोकवन्द्य, जगदीश्वर, दिव्य लक्षणों से युक्त श्रीराम कौसल्या के गर्भ से प्रकट हुए। उस समय सूर्य, मङ्गल, शनि, गुरु और शुक्र–ये पाँच ग्रह उच्च स्थान में थे। लग्न में चन्द्रमा के साथ वृहस्पति बैठे हुए थे। श्रीराम श्रीविष्णुमय खीर के आधे भाग से प्रकट हुए। अमित तेजस्वी पुत्र से कौसल्या को महान आनन्द मिला तथा उनसे वह वैसे ही विशेष सुशोभित हुई, जैसे वज्रपाणि इन्द्र से देवतामा अदिति सुशोभित हुई थीं।

जन्मकाल में एक ग्रह के उच्च स्थान में रहने पर जातक के समस्त अरिष्ट का नाश हो जाता है। दो ग्रह उच्च स्थान में रहने पर सामान्य रहता है, तीन ग्रह उच्च स्थान में रहने पर जातक महीपति बनता है, चाह ग्रह उच्च स्थान में रहने पर सम्राट बनता है और पाँच ग्रह उच्च स्थान में रहने पर लोक-नायक होता है। सूर्य के उच्च स्थान में रहने पर सेनापति, मङ्गल के उच्च स्थान में रहने पर वन का राजा, गुरु के उच्च स्थान में रहने पर धनी, शुक्र के उच्च स्थान में रहने पर राजा एवं शनि के उच्च स्थान में रहने पर जातक राजाधिराज होता है।

श्रीराम के जन्म के समय गन्धर्वों का मधुर गीत हो रहा था, अप्सरायें नृत्य कर रही थीं, देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं और आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। दर्शकों की बहुत भीड़ एकत्र हुई, गलियाँ और सड़कें खचाखच भरी हुई थीं। नट और नर्तक अपनी कला दिखला रहे थे। सर्वत्र गायकों एवं वादकों की मधुर ध्वनि गूँज रही थी। दीन-दुःखियों के लिए धन (रत्नादि) लुटाये जा रहे थे। राजा दशरथ ने सूत, मागध और बन्दीजनों को यथायोग्य पुरस्कार दिया तथा वैदिक ब्राह्मणों के लिए धन एवं सहस्रों गो-दान किया। इस तरह अयोध्या में बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया।

देवर्षि नारद ने दिव्यगुणनिधि विष्णुस्वरूप भगवान श्रीराम में स्वरूप निरूपक धर्म सृष्टि उपयोगी गुण सर्वाङ्ग सुन्दर विग्रह और आश्रित रक्षण उपयोगी गुणों का वर्णन किया है। भगवान श्रीराम स्वाभाविक निर्विकार अचिन्त्य विविध विचित्र शक्ति सम्पन्न स्वाभाविक प्रकाशमान निरतिशय आनन्द स्वरूप तथा समस्त जगत् को वश में रखने वाले थे। वे सर्वज्ञ नितिमान् वेदप्रवर्तक लीलाविभूति और त्रिपादविभूति इन दोनों विभूतियों के ऐश्वर्य सम्पन्न तथा शत्रुओं के नाश करने वाले सर्वाङ्ग सुन्दर विग्रह तथा शरणागत रक्षण रूप धर्म को जानने वाले थे।

**छन्द— भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।**
**हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप विचारी।।**

**लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आधुज भुजचारी।**
**भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी।।**
**कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनन्ता।**
**माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुराना भनन्ता।।**
**करुणा सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।**
**सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रकट श्रीकंता।।**
**ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति बेद कहै।**
**मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर-मति थिर न रहै।।**
**उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।**
**कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।**
**माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।**
**कीजै सिसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनुपा।।**
**सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।**
**यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।**

**दोहा— बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।**
**निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।**

●

## *सहस्त्रगीति से...*

पाण्डवदूत भगवान के एक अद्भुत चरित्र का सहस्त्रगीति में वर्णन किया गया है। सन्धि कराने के लिए पाण्डवों के दूत बनकर जब श्रीकृष्ण भगवान दुर्योधन के यहाँ पधारे, तब इस वृत्तान्त को जानकर उस पापी ने अपने आवास मण्डप में अपने मित्र दूसरे अनेक राजाओं के बीच में उच्च सिंहासन पर बैठकर सबको ऐसी कठोर आज्ञा दी कि गाय चराने वाले कृष्ण के आने पर उसके सम्मानार्थ किसी को आसन से नहीं उठना चाहिए, जो भूलकर उठेगा वह कठोर दण्ड का पात्र होगा; परन्तु जब भगवान उस सभा-भवन में पधारे, तब आपके अलौकिक तेज से परवश होकर स्वयं दुर्योधन ही एकदम आसन छोड़कर उठ गया। इसको देखते ही सभी सभासद उठकर खड़े हो गये। इतने में दुर्योधन होश में आ गया और लज्जा से आसन पर फिर बैठकर, आश्चर्य, असूया व कपट से भरी दृष्टि से श्रीकृष्ण को देखने लगा। उसने भगवान के विराजने के लिए एक कृत्रिम आसन को दिखाया, जिस पर बैठते ही वह टूट गया और जमीन में धँस गया। इस कपट कृत्य से संक्रुद्ध भगवान ने भी बड़े स्वरूप में होकर वहाँ से बाहर आकर तीक्ष्ण दृष्टि से उसको देखा।

●

# धर्म और विज्ञान

धर्म का विज्ञान से किसी प्रकार का झगड़ा या मतभेद नहीं है। धर्म जहाँ एक ओर व्यक्तिगत सामाजिक सदाचार तथा पवित्र विचार की ओर इङ्गित करता है, वहाँ विज्ञान प्रकृति के रहस्यों का दिग्दर्शन कराता है। धर्म सदाचार सिखाता है, विज्ञान ज्ञान देता है। प्रथम कर्त्तव्य की प्रेरणा करता है, दूसरा सुख-साधन जुटाता है। एक श्रेय है, दूसरा प्रेय। दोनों ही सत्य पर आधारित हैं। समाज-कल्याणार्थ वे एक-दूसरे के पूरक हैं। एक ही पेड़ की दो शाखाएँ हैं, जिनका फल है–मानव कल्याण।

विज्ञान बुद्धि प्रधान है और धर्म भावना प्रधान। विज्ञान जब भावना रहित हो जाता है, तब विनाश कर बैठता है। विज्ञान पर धर्म का नियन्त्रण पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की क्षमता रखता है। इस कारण दोनों का समन्वय आज के युग में नितान्त आवश्यक है। विज्ञान की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी एक उत्तम नागरिक बनाने के लिये धर्म की। विज्ञान को सुखद मङ्गलकारी बनाने के लिए उस पर धर्म का नियन्त्रण आवश्यक है। हम आज पृथ्वी की दयनीय स्थिति देख रहे हैं—गृहयुद्ध, विप्लव, क्रान्ति, विक्षोभ, अपहरण, हत्यायें और भीषणतम नरसंहार के विस्फोटों की प्रतिस्पर्धा से हमारा विश्व आज विनाश के कगार पर बैठा पशुबलि के समान खड्ग प्रहार होने की घड़ियाँ गिन रहा है।

इसका एक-दूसरा पहलू भी है। क्या इन विकसित देशों की प्रजा शान्ति का अनुभव कर रही है? शान्ति हेतु क्या ये एल०एस०जी० का प्रयोग नहीं कर रहे हैं? नींद की गोलियाँ नहीं खा रहे हैं और अपना देश छोड़कर 'हरे राम हरे कृष्ण' की रट नहीं लगा रहे हैं? विज्ञान में तो वे अग्रणी हैं, फिर ऐसा क्यों? क्योंकि धर्म से उन्होंने सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। भारत ने धर्म के क्षेत्र में प्राचीन काल से ही विश्व का नेतृत्व किया था, आज भी करेगा। अभी दो दशक पूर्व की ही बात है, जब हमने अपने पैरों पर चलना सीखा, किन्तु विश्व को पञ्चशील और सही अस्तित्व का पाठ पढ़ाया। आज आधे से अधिक राष्ट्र हमारे पीछे हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भी हम किसी से कम नहीं हैं। उन्हीं पराक्रमी राष्ट्रों की श्रेणी में हम भी हैं अणु विस्फोट की हममें क्षमता है। प्रक्षेपास्त्र का हमने अध्ययन किया है। हम विकास की ओर बढ़ रहे हैं, किन्तु विनाशकारियों की होड़ से दूर हैं। हमने किसी भी देश पर आज तक आक्रमण नहीं किया, हमारा कोई उपनिवेश नहीं है। हमने भयङ्कर से भयङ्कर झन्झावातों का मुकाबला किया है। बाहरी आँधियों और तुफानों को सहा, किन्तु धर्म से हम अलग नहीं हुये।

विभिन्न पन्थ तथा सम्प्रदाय के आक्रमण हम पर हुये, उनका विनाश हुआ। परिणामत: वे हमसे ऐसे घुल-मिल गये, जैसे खल में किसी ने कूटकर एक रस कर दिया हो। अब भी हम अपनी समस्याएँ मिल-बैठकर सुलझाने में विश्वास करते हैं और एक-एक कर सुलझा ही रहे हैं। वर्तमान पृथ्वी बल्लभों के गुटों का हम शक्ति सन्तुलन बनाये रख रहे हैं। इसलिये आशान्वित हैं कि आज नहीं तो निकट भविष्य में ही हम विज्ञान पर धर्म की विजय अवश्य कर दिखलायेंगे।

# पुनः अध्योध्या से लङ्का गये श्रीराम

भगवान श्रीराम अयोध्या में रहते हुए विचार किये कि मैं पुन: लङ्का में चलूँ। वहाँ विभीषण का समाचार समझ लूँगा और उससे कह दूँगा कि लङ्का में कोई देवता या मनुष्य आये तो उससे अच्छा व्यवहार कीजिएगा। भगवान श्रीराम इस विषय को मन में ही सोच रहे थे कि उसी समय भरत जी वहाँ उपस्थित हो गये। उन्होंने श्रीराम को विचारमग्न देखकर उनसे पूछा कि आप क्या सोच रहे हैं? यदि कोई गुप्त बात न हो तो मुझे बताने की कृपा करें। श्रीराम ने भरत से कहा कि मेरी कोई भी बात तुमसे छिपाने योग्य नहीं है। तुम और महायशस्वी लक्ष्मण मेरे बाहरी प्राण हो। मेरे मन में इस समय सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि विभीषण देवताओं के साथ कैसा बर्ताव करते हैं? क्योंकि देवताओं के हित के लिए ही मैंने रावण का वध किया है। इसलिए जहाँ विभीषण हैं वहाँ मैं जाना चाहता हूँ। लङ्कापुरी में जाकर राक्षसराज विभीषण को उनके कर्त्तव्य का उपदेश करूँगा। भगवान श्रीराम के ऐसा कहने पर भरत ने हाथ जोड़कर उनसे कहा कि मैं भी आपके साथ चलूँगा। श्रीराम ने भरत से कहा कि अवश्य चलो। तदनन्तर भगवान ने लक्ष्मण से कहा कि वीर! तुम नगर में रहकर हम दोनों के लौटने तक इसकी रक्षा करना। तत्पश्चात् श्री रामचन्द्र ने पुष्पक-विमान का स्मरण किया। विमान के आ जाने पर वे दोनों भाई उस पर आरूढ़ हुए। सबसे पहले वह विमान गान्धार देश में गया, वहाँ भगवान ने भरत के दोनों पुत्रों से मिलकर उनकी राजनीति का निरीक्षण किया। तदनन्तर वहाँ से पूर्व दिशा में जाकर लक्ष्मण के पुत्रों से मिले, वहाँ से दक्षिण दिशा की ओर विमान चला।

भगवान श्रीराम भरत को वनगमनकाल के सभी स्थलों का परिचय देते हुए सीताहरण, जटायु का उद्धार, शबरी का परिचय, सुग्रीव की मित्रता तथा बालि-वध की कथा कहते हुए बालि की राजधानी किष्किन्धापुरी में पहुँच गए। वहाँ के राजा सुग्रीव ने वानरों के साथ श्रीराम एवं भरत दोनों भाईयों के चरणों में गिरकर प्रणाम किया। तदनन्तर सुग्रीव ने दोनों भाईयों का पूजन किया। फिर उन दोनों से आगमन का कारण पूछा। श्रीराम ने लङ्का यात्रा की बात कही तब सुग्रीव भी उनके साथ हो गए, इस तरह सुग्रीव श्रीराम और भरत–ये तीनों पुष्पक-विमान पर बैठ गए। पुष्पकविमान वहाँ से लङ्का की ओर चल दिया। वह लङ्का में आ गया।

भगवान श्रीराम को लङ्का में आने का समाचार सुनते ही विभीषण विमान के पास पहुँचकर साष्टाङ्ग प्रमाण किए। विभीषण ने हाथ जोड़कर भगवान श्रीराम से कहा आज मेरा जन्म सफल हुआ, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गए; क्योंकि आज मुझे आपके विश्ववन्द्य चरणों का दर्शन मिला है। तदनन्तर विभीषण ने भरत और सुग्रीव से गले लगकर मिले। विभीषण जी ने श्रीराम को उत्तम आसन पर बैठाकर विधिवत् पूजन किया। तदनन्तर विभीषण के मन्त्रिमण्डल और लङ्का के निवासी श्रीरामचन्द्र के दर्शन के लिए उत्सुक होकर वहाँ आये। विभीषण के भवन में भगवान ने तीन रात तक निवास किया। तत्पश्चात् राजमाता कैकसी ने विभीषण से कहा कि बेटा! मैं श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन करूँगी। ये रघुनाथ जी सनातन भगवान विष्णु हैं तथा परम सौभाग्यवती सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं, तुम्हारा बड़ा भाई उनके स्वरूप को नहीं पहचान पाया था, तुम्हारे पिता ने देवताओं के सामने पहले ही कह दिया था कि भगवान श्रीविष्णु रघुकुल में राजा दशरथ के पुत्र रूप में अवतार लेंगे। वे ही दशग्रीव रावण का विनाश करेंगे।

विभीषण ने अपनी माँ कैकसी के आगमन की सूचना श्रीराम को दिया। उसने कहा कि मेरी माता आपका दर्शन करना चाहती है। श्रीराम ने कहा कि राक्षसराज मैं तुम्हारी माता का दर्शन करने की इच्छा से स्वयं ही उनके पास चलूँगा। तुम शीघ्र मेरे आगे-आगे चलो। भगवान श्रीरामचन्द्र कैकसी के पास पहुँचकर उनको प्रणाम करते हुए कहा कि मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप धर्मत: मेरी माता हैं। जैसी कौसल्या मेरी माता है, उसी प्रकार आप भी हैं। कैकसी ने श्रीराम से कहा तुम्हारी जय हो, तुम चीरकाल तक जीवित रहो। मेरे पति ने कहा था कि भगवान विष्णु देवताओं का हित करने के लिए रघुकुल में मनुष्य रूप में अवतार लेंगे। आज मैंने तुम्हें पहचान लिया, तुम्हें अमर यश प्राप्त हो।

तदनन्तर विभीषण की पत्नी सरमा श्रीराम से आकर मिली। श्रीराम ने भरत से उसका परिचय दिया। श्रीराम ने विभीषण से कहा तुम सदा देवताओं का प्रिय कार्य करना, कभी उनके प्रति अपराध न करना, तुम्हें देवराज की आज्ञा के अनुसार चलना चाहिए। लङ्का में किसी तरह कोई मनुष्य चला आए तो राक्षसों को उसका वध नहीं करना चाहिए। श्रीरामचन्द्र के वचन सुनकर विभीषण ने कहा— प्रभो! मैं आपकी आज्ञा के अनुकूल ही लङ्का में काम करूँगा।

उसी समय वायुदेव ने आकर श्रीराम से कहा कि यहाँ भगवान श्रीविष्णु की श्रीवामन स्वरूप की मूर्ति है। पूर्वकाल में जब बलि ने स्वर्गलोक पर अधिकार कर लिया था, उस समय भगवान विष्णु अदिति की प्रार्थना पर उसके गर्भ से प्रकट हुए थे, उनका नाम वामन पड़ा था। वे बलि को स्वर्ग से हटाकर देवताओं को राज्य वापस करवा दिये थे। देवराज इन्द्र ने प्रेमवश वामन की मूर्ति बनवाकर स्वर्ग में स्थापित कर दिया था। इन्द्र प्रतिदिन वामन भगवान का विधिवत् पूजन करते थे, रावणपुत्र मेघनाद ने इन्द्र को परास्त कर दिया था उस समय विजय चिह्न के रूप में वह श्रीवामन रूप की मूर्ति को इन्द्रलोक से लङ्का उठाकर ले आया था। रावण ने अपने छोटे भाई विभीषण को वह वामन भगवान की मूर्ति दे दिया था। विभीषण मन्दिर बनवाकर उसी में वामन भगवान की मूर्ति स्थापित कर विधिवत् पूजन करते थे।

वायुदेव ने भगवान श्रीराम से कहा इस वामन की मूर्ति को लङ्का से आप ले जाएँ और कान्यकुब्ज देश में स्थापित कर दें, तथास्तु कहकर श्रीरामचन्द्र जी लङ्का से चलते समय श्रीवामन भगवान की मूर्ति को पुष्पकविमान पर रख लिये। विभीषण ने चलते समय भगवान श्रीराम को असंख्य रत्न दिये। भवगान श्रीराम श्रीवामन जी कि मूर्ति लेकर विमान से चलने को तैयार हुए, उस समय विभिषण भी प्रभु के साथ चलने के लिए इच्छा व्यक्त कर रहे थे, भगवान श्रीराम ने उनसे कहा तुम यहीं रहो, विभीषण ने कहा–मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा; परन्तु इस सेतु की मार्ग से पृथ्वी के समस्त मानव लङ्का में आकर मुझे परेशान करेंगे, ऐसी परिस्थिति में मुझे क्या करना चाहिए? विभीषण की बात सुनकर श्रीरघुनाथ जी ने हाथ में धनुष लेकर सेतु को दो टुकड़े कर दिए। तीन भाग करके बीच का दस योजन उड़ा दिये इसके बाद एक स्थान पर एक योजन और तोड़ दिया। ब्रह्माजी ने उस समय भगवान की स्तुति करते हुए कहा कि रघुनन्दन आप साक्षात् श्रीविष्णु हैं। देवताओं का कार्य करने के लिए इस पृथ्वी पर मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए हैं। आप देवताओं का सम्पूर्ण कार्य कर चूके हैं, अत: अब आप गङ्गाजी के दक्षिण किनारे श्रीवामन भगवान की प्रतिमा को स्थापित करके अयोध्यापुरी को लौट जाइये, भगवान श्रीराम ने वैसा ही किया।

# भगवान ने सत्कर्म का पालन किया है लोक-शिक्षार्थ

भगवान ने गीता तृतीय अध्याय के २५वें श्लोक से कहा है कि जैसे अज्ञानी पुरुष आसक्त होकर कर्म करते हैं उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषों को भी अनासक्त होकर कर्म करना चाहिए; क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग का अनुसरण साधारण लोग करते हैं। साधारण लोगों को सन्मार्ग से ले चलना ही लोक-संग्रह है। यह ज्ञानियों के लिए भी आवश्यक है।

भगवान श्रीकृष्ण ने यह भी कहा कि सामान्यजनों को सत्कर्म मार्ग में प्रवृत्त कराने के लिए मैं भी सत्कर्म का पालन करता हूँ; क्योंकि लोग मुझे महान समझते हैं और महान पुरुषों के अनुसरण सामान्यजन करते हैं। यदि मैं कर्म न करूँ तो जगत् में शिष्टाशिष्ट की व्यवस्था नहीं रह जायेगी। भगवान के इस कथन की पुष्टि श्रीमद्भागवत से होती है।

एक बार भगवान के वैभव को देखने के लिए नारद जी द्वारकापुरी गये। वहाँ नारद जी ने प्रत्येक राजमहल में रानियों के साथ विभिन्न प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए भगवान श्रीकृष्ण को देखा। उनमें कहीं यज्ञकुण्डों में हवन करते हुए, कहीं पञ्चमहायज्ञों से आराधना करते हुए, कहीं सन्ध्या करते हुए, कहीं मन्त्र जपते हुए, इस तरह भगवान गृहस्थों को पवित्र करने वाले श्रेष्ठ धर्मों का आचरण कर रहे थे। भगवान श्रीकृष्ण को धार्मिक अनुष्ठान करते हुए देखकर नारदजी को यह शङ्का हो गई कि अज्ञानी मानव स्वर्ग, वैकुण्ठ आदि प्राप्ति के लिए यज्ञादि धार्मिक कर्मों को करता है। भगवान श्रीकृष्ण तो जगन्नियन्ता स्रष्टा पालक और संहारक हैं। वे कर्मानुसार संसारी जीवों को स्वर्गादि फल प्रदान करते हैं। ये स्वतन्त्र हैं। कर्म का बन्धन इन्हें नहीं लगता। फिर ये धार्मिक कर्मों का अनुष्ठान क्यों कर रहे हैं। भगवान ने नारद जी को सशङ्कित देखकर उनसे कहा कि नारद जी सांसारिक लोगों को धर्म की शिक्षा देने के लिए मैं इस प्रकार धर्म का आचरण करता हूँ। यदि मैं धर्म का पालन न करूँ तो सामान्यजन धार्मिक कर्म छोड़ देंगे। उससे जगत् में विशेष बुराईयाँ बढ़ जायेगी।

अत एव हे नारद! मुझे धार्मिक कर्म करते हुए देखकर आप मोहित न हों। यह प्रसङ्ग गृहस्थों के लिए विशेष शिक्षाप्रद है। जब गृहस्थों को गीता की बात कहकर सन्ध्यावन्दन आदि कर्म करने के लिए उपदेश किया जाता है, जब ज्ञानाभाव के कारण बहुत से लोग कह देते हैं कि हमलोग गृहस्थ हैं, हमलोगों को छुट्टी कहाँ है कि पूजा-पाठ करें; परन्तु उन्हें विचार करना है कि विशेष धर्मों के आचरण गृहस्थों के लिए ही कहे गये हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गृहस्थ होकर ही पूर्वोक्त धर्मों का पालन लोक-शिक्षार्थ किया है। जो सच्चे त्यागी, साधु, संन्यासी हैं, उन्हें तो शुभाशुभ कर्म का फल मिलता ही नहीं। इसलिए गीता १८वें अध्याय के १२वें श्लोक से कहा गया है कि इष्ट, अनिष्ट और मिश्र–इन तीन प्रकार के कर्मफल संसारियों को मिलते हैं, त्यागियों को नहीं।

दो प्रकार के पाप होते हैं प्रथम जो कर्म जिसके लिए कर्त्तव्य रूप में करने के लिए कहा गया उसे न करने से। जैसे प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन भगवत्पूजन आदि कर्म करना है। जो व्यक्ति नहीं करता है, वह दोष का भागी बनता है। दूसरा जो निषिद्ध कर्म है, जैसे चोरी करना, झूठ बोलना, दूसरे को पीड़ा देना, अखाद्य खाना, अपेय पीना आदि कर्मों को करने से पाप के भागी होते हैं। अत: मानव को अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन अवश्य करना चाहिए।

**शेष पृष्ठ १५ पर...**

# अनन्य भक्ति से भगवत्प्राप्ति

**पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।**
**भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।**
**ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ।।**

भगवद्भक्तों के लिए परम प्राप्य परमात्मा हैं। उनकी प्राप्ति का उपाय भक्तियोग है। भक्तियोग का अङ्ग है जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार। जीवात्मस्वरूप का दर्शन ज्ञानयोग से प्राप्त होता है। ज्ञानयोग नित्य आत्मतत्त्व ज्ञानपूर्वक फलासक्ति रहित कर्मानुष्ठान से होता है। अत एव मुमुक्षु पुरुषों के लिए शास्त्र से उपदिष्ट आत्मज्ञान पूर्वक निष्काम कर्म करने के लिए भगवान ने उपदेश किया है। निष्काम कर्म का अर्थ है फलासक्ति, कर्म में ममता और कर्तृत्वाभिमान त्यागपूर्वक भगवदुपासना रूप में स्वकर्त्तव्य कर्म का पालन करना। इस रूप में कर्म करने से अनादिकाल से सञ्चित आत्मा के मल नष्ट हो जाते हैं। उससे निर्मल आत्मा में ज्ञानयोग का उदय होता है। उसी ज्ञानयोग को ज्ञाननिष्ठा, स्थितप्रज्ञता आदि शब्दों से वर्णन किया गया है। ज्ञानयोग से आत्मा के यथार्थ स्वरूप का दर्शन होता है। तदनन्तर भगवान के चरणों में पराभक्ति बनती है।

भक्तियोग में भक्त का कल्याण उसके अपने प्रयत्नों का फल न होकर भगवत्कृपा से होता है। भगवान सर्वसमर्थ और सर्वशक्तिमान् हैं। संसार का बड़े से बड़ा कार्य या कठिन से कठिन कार्य केवल उनकी इच्छामात्र से हो सकता है। भक्त भगवान के अतिरिक्त किसी को मानता या जानता ही नहीं है। भगवान मिलें या न मिलें, दर्शन दें या न दें, भक्त को इसका ध्यान ही नहीं रहता, वह तो सगुण साकार भगवान को ही अपना इष्टदेव मानता है। इसलिये अपने आराध्यदेव में उसका इतना आकर्षण उत्पन्न हो जाता है कि वह तल्लीन होकर उन्हें ही निहारता रहता है, जैसे कृष्णावतार के समय एक गोकुल की गोपी ने अपनी सखी से कहा कि सखी नन्दबाबा के आँगन में मत निहारना, अन्यथा वहाँ एक नंग-धड़ंग श्याम रंग का और नीली आँखों वाला बालक रहता है, वह बरबस अपनी ओर खींचकर सर्वस्व लूट लेता है, इसलिये तू लुट जायेगी और कहीं की भी नहीं रहेगी।

भक्ति के प्रारम्भ में साधक अपने को भगवान का दास और भगवान को अपना स्वामी मानता है, फिर क्रमशः सखा, पुत्र और प्रियतम मानने लगता है। वास्तव में भक्त भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य को मानता या जानता ही नहीं है, इसलिये भक्त के इस दृढ़ विश्वास पर भगवान रीझ जाते हैं और भक्त का कल्याण कर देते हैं। भक्त प्रारम्भ में जिन बातों को भगवान के समझ प्रकट करने में शङ्का करता था, वह परदा हट जाता है और भक्त अपने मन में आयी सभी बातों को भगवान को सुनाता रहता है; क्योंकि भगवान उसके अपने हैं और इस अपने-पन की प्रगाढ़ता ही भक्त और भगवान के मध्य बढ़ते प्रेम का रूप धारण कर लेती है। सांसारिक पति-पत्नी के मध्य यह अपने-पन की प्रगाढ़ता ही है, जो सारे परदों को हटा देती है और सांसारिक प्रेम के रूप में हमें दिखलायी देती है, जबकि वास्तविक रूप से यह प्रेम की एक झलक मात्र ही है; क्योंकि यह कथित प्रेम दोनों ओर से स्वार्थ या लेने की भावना पर टिका रहता है, जबकि भगवदीय प्रेम भगवान् को सुख कैसे मिले भक्त की इस देने या त्याग की भावना पर टिका रहता है। यह प्रेम जितना गहरा और प्रगाढ़ होगा आनन्द उतना ही अधिक मिलेगा। स्वार्थ में अभिलाषा की तृप्ति होती है जो न होने पर दुःख बन जाती है, जबकि त्याग में वास्तविक आनन्द मिलता है,

इसमें आनन्द न मिलना सम्भव ही नहीं है।

जीव के अतिरिक्त संसार में दो ही तत्त्व विद्यमान हैं, भगवान और उनकी माया। जीव ने माया का संग करके भोग भोगने या संग्रह करने की इच्छा करके भगवान से विमुखता कर ली। इस विमुखता में भी जीव पर भगवान की कृपा ज्यों की त्यों बनी रहती है, किन्तु जीव अपनी सांसारिक अभिलाषा की पूर्ति के लिये उसमें इतना लिप्त रहता है कि भगवत्कृपा का अनुभव ही नहीं कर पाता। अगर जीव भगवान के सम्मुख होने का प्रयत्न करे तो साधन-अवस्था में ही भगवत्कृपा का अनुभव होने लग जायेगा।

भगवान और उनकी भक्ति में ऐसा गुण है कि जो भी व्यक्ति, वस्तु या पदार्थ उनके सम्पर्क में आने के पूर्व अशुद्ध या सदोष थे, वे भी धीरे-धीरे शुद्ध और निर्दोष होते जाते हैं। पारस पत्थर का गुण है कि वह अपने सम्पर्क में आने से लोहे को सोना बना देता है, किन्तु भगवान का गुण ऐसा है कि वे अपने सम्पर्क में आने वाले को शुद्ध बना देते हैं। रावण, कुम्भकर्ण, कंस, शिशुपाल आदि बड़े-बड़े दुष्टों को भी भगवान ने उनका उद्धार कर अपने धाम भेज दिया।

संसार में तीन बातों की प्राप्ति को शास्त्रों ने दुर्लभ बताया है–पहला मानव शरीर की प्राप्ति, दूसरा भगवत्प्राप्ति की प्यास या इच्छा (मुमुक्षा) और तीसरा ऐसे महात्माओं का सत्सङ्ग मिलना, जिन्होंने भगवत्प्राप्ति कर ली है।

हमें भगवान ने कृपाकर चौरासी लाख योनियों में से सर्वश्रेष्ठ मानवशरीर प्रदान कर दिया, पवित्र देश भारतवर्ष में जन्म दे दिया। धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत माता-पिता देकर जन्म से ही हिन्दू संस्कारों में शरीर का लालन-पालन करवा दिया, पूर्णरूप से शाकाहारी परिवार दे दिया। भगवान ने उपर्युक्त सारे साधन देकर अपनी प्राप्ति की मंसा हमें जता दी है। अब हमें उनके ऊपर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास रखकर अनुकूल परिस्थितियों के लाभ से वञ्चित नहीं रहना है, अन्यथा हमारी महान् भूल होगी और फिर हमें चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाना पड़ेगा। इसलिये हमें दृढ़ विश्वास और श्रद्धा के साथ तत्पर होकर साधना के पथ पर भगवत्प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर तीव्र गति से आगे बढ़ना चाहिये। पता नहीं, इस क्षणभङ्गुर शरीर से प्राणपखेरू कब, कहाँ और किस समय उड़ जायँ और हमको पछवाते या हाथ मलते रह जाना पड़े। भगवान ने आज तक हमारे कल्याण के लिये सभी कार्य सकारात्मक ढंग से करवाकर हमारा कल्याण करने का सङ्केत दे दिया है। अब हमें अपना कर्त्तव्य ईमानदारी और दृढ़ विश्वास से निभाना है।

भगवत्प्राप्ति प्राप्त की प्राप्ति है, सांसारिक वस्तुओं या पदार्थों की पूर्ति होना अप्राप्त की प्राप्ति है, वह भी हमारी मान्यता पर आधारित है, अन्यथा है नहीं। अत: भगवत्प्राप्ति के लिये जीव का कार्य दृढ़ मान्यता करना है, वरना प्राप्त का प्राप्त करना क्या मुश्किल कार्य है अर्थात् भगवत्, अप्राप्ति का ब्रह्म या अज्ञानमात्र मिटाना है। यह वहम या अज्ञान भी भगवत्कृपा से ही दूर होगा, अगर हमारे हाथ का कार्य होता तो अज्ञान कभी का मिट गया होता; क्योंकि जीव सर्वज्ञ भगवान का अंश है, अत: अज्ञानी कहलवाना कभी भी किसी को भी कैसी भी परिस्थिति में अच्छा नहीं लगता, इसलिये अज्ञान की निवृत्ति करना जीव का प्रारम्भिक उद्देश्य है, इसके लिये हमें भगवान की पूर्ण शरणागति स्वीकार करनी होगी, जिससे भगवान हमें दिव्य-मन, दिव्य-बुद्धि और दिव्य-दृष्टि प्रदान कर सकें, जो भगवान को जानने की क्षमता रखता हो और हमारा अज्ञान या वहम मिटा सके, अन्यथा वर्तमान में हमारी प्राप्त प्राकृत इन्द्रियाँ भगवान को जानने में असक्षम हैं। यह सभी कुछ लुका-छिपी के खेल की

तरह है, जहाँ एक बालक अज्ञात स्थान पर छिप जाता है और अपने साथी अबोध बालक को आवाज देकर खोजने के लिये कहता है। खोजने वाला बालक अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार खोजने का प्रयत्न करता है, किन्तु सफलता हाथ नहीं लगती और हताश होकर छिपने वाले बालक को आवाज देकर कहता है कि मैं हार गया हूँ, तू ही बाहर आ जा। छिपने वाला बालक जीत की खुशी में पीछे से आकर हारने वाले बालक को अपनी बाहों में पकड़कर कहता है कि मैं यहाँ हूँ। ठीक, उसी प्रकार भगवान जो सर्वव्यापक हैं आप स्वयं तो छिप जाते हैं और संसार में माया के रूप से मौजूद रहते हैं, किन्तु माया अपना परदा डालकर जीव को भ्रमित कर देती है। भगवान जीव को जो अल्पज्ञ है, आवाज देकर खोजने के लिये कहते हैं। सर्वव्यापक परमात्मा को अल्पज्ञ जीव उनकी कृपा के बिना (इच्छा के प्रतिकूल या माया की मौजूदगी में) कैसे खोज सकता है? अर्थात् जीव के लिये यह कार्य बिना भगवत्कृपा के सम्भव ही नहीं है। फिर ज्ञान की दृष्टि से सर्वव्यापक परमात्मा का एक जगह छिपना और जीव द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा को एक जगह खोजकर बतला देना दोनों ही असम्भव कार्य हैं। रामावतार में भगवान श्रीराम ने वन-प्रवास के दौरान वाल्मीकि जी से अपने लिये वन में रहने के लिए स्थान बतलाने का आग्रह किया। उसके उत्तर में वाल्मीकि जी ने भगवान राम से जानना चाहा कि 'आप कहाँ नहीं हैं' पहले वह स्थान मुझे बतला दीजिये, फिर मैं आपको आपके रहने के स्थान बतला दूँगा। यह भक्त और भगवान के मध्य विनोद की आन्तरिक गूढ़ और तात्त्विक बातें हैं, जिनका सीधा-सा अर्थ है कि भगवान संसार के कण-कण में व्याप्त हैं।

साधना की दृष्टि से गहरे चिन्तन में उतरने से ज्ञात होता है कि सारे ब्रह्माण्ड में एकमात्र परमात्मा की सत्ता ही पूर्णरूप से विद्यमान है, अन्यथा परमात्मा सर्वव्यापक कैसे होता? जीव, परमात्मा और क्रिया का एकीकरण हो जाने पर क्या शेष रहेगा? अर्थात् न तो प्राप्त करने वाला रहा, न प्राप्त होने वाला परमात्मा रहा और क्रिया के रहने का तो प्रश्न ही नहीं है; क्योंकि प्रकृति का नियम है कि कर्त्ता और करण के बिना क्रिया का होना सम्भव ही नहीं है। यह स्थिति भी अहम् की सत्ता का अपनी विराट् सत्ता में विलय हो जाने तक ही भासती रहती है और फिर केवल एक सत्तामात्र ही रह जाती है। यह सत्ता ही भगवत्-सत्ता है।

जिस प्रकार संसारी माता-पिता अपने बालक के हित या इच्छा की पूर्ति के लिये अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्न करते हैं, वैसे ही भगवान् पर हमारे मानव-जीवन के एकमात्र प्रयोजन भगवत्प्राप्ति की आवश्यक माँग की पूर्ति करवाने का दायित्व हमसे ज्यादा है, अन्यथा हमको मानव-शरीर देने का उनका प्रयोजन ही क्या था? हमें तो केवल इतना ही कहना है कि मेरे स्वामी, मेरे माता-पिता, मेरे मालिक, मेरे सर्वस्व आप ही सोच-विचार कीजिये कि आपको इस अबोध और असहाय बालक का हित कैसे करना है? क्योंकि आप जैसा चाहें वैसी पात्रता इस बालक को प्रदान कर, इच्छित क्रिया करवाकर आपके दिये प्रयोजन की सिद्धि करवाने की कृपा करें; क्योंकि यह सभी कुछ आपकी कृपा से ही सम्भव है। मैं तो आज से ही आपके शरण हो गया, अब आप जानें या आपका काम जाने। मुझे अपने प्राकृत मन एवं बुद्धि से शरणागति की स्वीकृति हो पाना असम्भव कार्य लगता है, आप सर्वसमर्थ और शरणागतवत्सल हैं। आपका तो यह प्रण है कि आप शरणागत जीव को निराश नहीं लौटाते। यह बात आप रामावतार में विभीषण जी की शरणागति प्रसङ्ग में घोषित कर चुके हैं। हे प्रभु! शरणागति की स्वीकृति जीव का हित समझकर

आप अपनी ओर से भी करने में हिचकिचाते नहीं हैं। फिर मेरी बारी आने पर आपने इतना विलम्ब क्यों कर दिया? लगता है मेरे शरणागति पाने के प्रयत्न में ही कहीं न कहीं, कोई न कोई दोष अवश्य रह गया है, अन्यथा आपसे भूल होने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं हो सकता और मुझे शरण कभी की मिल गयी होती, इसलिये अपनी उस त्रुटि के लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका अबोध, असमर्थ, अज्ञानी, पतित और संसार के भोगों में रचा निर्लज्ज बालक हूँ, किन्तु आपका दास, पुत्र, सेवक और अंश हूँ और आप करुणानिधान, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, पाप का हरण करने वाले और दयानिधान हैं, इसलिये मेरी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि इस अधम को संसाररूपी भूल-भुलैया से निकालकर आप अपनी भक्ति का दान देने की कृपा करें। फिर आप तो सर्वज्ञ हैं, इसलिये जिसमें आपको मेरा हित लगता हो, वैसा करने की कृपा करें; किन्तु यह जो चौरासी लाख योनियों में आपने कृपाकर सर्वश्रेष्ठ मानव शरीर मुझे प्रदान किया है, इसका कल्याण न होने से आपका प्रयोजन विफल न हो जाय। अनेक वर्षों से मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। फिर भी ये इन्द्रियाँ अपने निर्माता को जानने के लिये तरस रही हैं। आप कृपानिधान हैं, आजतक हर समय आपकी कृपा के परिणामस्वरूप ही मेरा यह जीवन चल रहा है। हे कृपानिधान! अब एक कृपा और कर दीजिये कि यह शरीर अन्त होने के पूर्व आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सके।

**पृष्ठ सं० ११ का शेष...**

यह न समझ ले कि केवल दूषित कर्म करने से ही दोष होता है। अपने कर्त्तव्य कर्म का त्याग कर देने से भी महान दोष का पात्र बनता है।

अत: मानव को अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन में उपेक्षा बुद्धि नहीं होनी चाहिए। आप किसी नौकर से काम लेते हैं। अगर वह ठीक से समय पर काम नहीं करता है तो आपको कष्ट होता है या नहीं। उसी प्रकार हम सब परमात्मा के दास हैं, हमें उनकी आज्ञा का समुचित रूप से पालन करना चाहिए। सत्कर्म का पालन ही प्रभु को विशेष प्रिय है।

## श्री वैष्णव को दूसरे धर्म में नहीं जाना चाहिए

श्रीरामानुज स्वामी जी के एक शिष्य के पुत्र का सम्बन्ध एक-दूसरे धर्म के साथ हो गया। श्रीरामानुज स्वामी ने विचार किया कि हमारा सम्बन्धी वैष्णव दूसरे मत में जाकर भ्रष्ट न हो जाय। इसलिए श्रीरामानुज स्वामी श्रीवैष्णव का पुत्र दूसरे धर्म में न जाय एतदर्थ उन्होंने भगवान के मन्दिर में आये, वहाँ उनके शिष्य का पुत्र भी आ गया। श्रीरामानुज स्वामी ने कहा कि सुनो जी! तुमको इनका अधिक ज्ञान नहीं है कि शास्त्र का प्रमाण बतलाकर समझावें, हमको वेदान्त से यही ज्ञान हुआ है कि इस आत्मा का उद्धार करने वाला द्वय मन्त्र के सिवाय दूसरा को नहीं है ऐसा कहकर स्वामी जी ने भगवान के चरण-कमलों में रखे हुए श्रीशठकोप को उठाकर उसे सौगन्ध दिलाया। वह उस दिन से द्वयमन्त्र में निष्ठा रखने लगा। श्री आचार्य चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति भगवान के चरण को छोड़कर अवैदिक मार्ग में न जाय।

# इन्द्र की क्रूरता से विरोचन को लाभ

देव, दानव और मानव आदि किसी में भी विचार की उत्कृष्टता श्रेयस्कर होता है। जिसका विचार उत्तम होता है उसके प्रति कोई बुरा कर्म भी करता है तो उसे लाभ ही होता है।

दैत्यराज भक्तशिरोमणि प्रह्लाद के पुत्र थे विरोचन, वे ही प्रह्लाद के पश्चात् दैत्यों के अधिपति बने थे। प्रजापति ब्रह्मा के समीप दैत्यों के अग्रणी रूप में धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए विरोचन ही गये थे। धर्म में इनकी श्रद्धा थी। आचार्य शुक्र के ये बड़े निष्ठावान भक्त थे और शुक्राचार्य भी इनसे बहुत स्नेह करते थे।

अपने पिता प्रह्लाद जी का विरोचन पर बहुत प्रभाव पड़ा था। इसलिये ये देवताओं से कोई द्वेष नहीं रखते थे। सन्तुष्टचित्त विरोचन के मन में पृथ्वी पर भी अधिकार करने की इच्छा नहीं हुई, स्वर्ग पर अधिकार करना, भला वे क्यों चाहते। वे तो सुतल के दैत्यराज होकर ही सन्तुष्ट थे।

शत्रु की ओर से सावधान रहना चाहिये, यह नीति है और सम्पन्न लोगों का स्वभाव है–अकारण शङ्कित रहना। अर्थ का यह दोष है कि वह व्यक्ति को निश्चिन्त और निर्भय नहीं रहने देता। असुरों एवं देवताओं की शत्रुता पुरानी और सहज है; क्योंकि असुर रजोगुण-तमोगुणप्रधान हैं और देवता सत्त्वगुणप्रधान। अत: देवराज इन्द्र को सदा यह भय रहता था कि यदि कहीं असुरों ने अमरावती पर आक्रमण कर दिया तो परम धर्मात्मा विरोचन का युद्ध में सामना करना देवताओं की शक्ति से बाहर होगा, उस समय देवताओं को पराजय ही हाथ लगेगी।

शत्रु प्रबल हो, युद्ध में उसका सामना सम्भव न हो तो उसे नष्ट करने का प्रबन्ध पहले करना चाहिये। इन्द्र आक्रमण करके अथवा धोखे से विरोचन को मार दें तो शुक्राचार्य अपनी सञ्जीवनी-विद्या के प्रभाव से उन्हें जीवित कर देंगे और आज के प्रशान्त विरोचन क्रुद्ध होने पर देवताओं के लिये विपत्ति बन जायेंगे। अत एव देवगुरु बृहस्पति की मन्त्रणा से इन्द्र ने अपने लक्ष्य-साधन हेतु ब्राह्मण का वेश बनाया और सुतल लोक में पहुँच गए।

विरोचन ने अभ्यागत ब्राह्मण का स्वागत किया और उनके चरण धोकर पूजन किया। इसके पश्चात् उसने हाथ जोड़कर बोला—मेरा आज सौभाग्य उदय हुआ कि मुझ असुर के सदन में आपके पवित्रतम चरण पड़े। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

इन्द्र ने विरोचन की दानशीलता की बहुत प्रशंसा की और विरोचन के आग्रह पर बोला कि मुझे आपकी आयु चाहिये।

दैत्यराज का सिर माँगना व्यर्थ था; क्योंकि गुरु शुक्राचार्य की सञ्जीवनी कहीं गयी नहीं थी। किन्तु विरोचन किञ्चित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नता से कहा—मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म लेना सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।

विरोचन ने अपने हाथ में खड्ग उठाया और मस्तक काटकर दूसरे हाथ से ब्राह्मण की ओर बढ़ा दिया। वह मस्तक लेकर इन्द्र भय के कारण शीघ्र स्वर्ग चले आये। विरोचन को भगवान ने अपना पार्षद बना लिया। जीवनदान देकर विरोचन प्रभु का कृपा पात्र बन गया।

# दक्षिण भारत के सन्त आलवार

दक्षिण भारत में कुछ प्रसिद्ध वैष्णव सन्त हुये हैं जिन्हें आलवार कहा जाता है।

आलवार का अर्थ है जिसने अध्यात्म ज्ञानरूपी समुद्र में गहरा गोता लगाया हो। आलवारों को प्रेम और आनन्द की वह दिव्य सरिता कह सकते हैं जो सच्चिदानन्द रूपी अगाध समुद्र में मिलकर ही शान्ति को प्राप्त होती है। आलवार लोग गीता की सजीव मूर्ति थे, उपनिषदों के उपदेश के जीते-जागते नमूने थे। भगवान् के चलते-फिरते मन्दिर थे और भगवत्प्रेम की कलकल निनादिनी सरितायें थे। आलवारों की संख्या बारह मानी जाती है। उन्होंने भगवान् नारायण, राम, कृष्ण आदि के गुणों का वर्णन करने वाले हजारों पद रचे जिनको सुनकर हृदय एक बार फड़क उठता है। आलवार सन्त इतने सीधे-सादे, इतने विनयी भगवत्प्रेम में इतने भींगे हुए और संसार से इतने ऊपर उठे हुये थे, कि उन्होंने इस बात की बिल्कुल परवाह ही नहीं की कि उनके सुन्दर पदों को लोग जानें। उन्होंने आजकल के प्रचारकों की भाँति अपने उपदेशों का प्रचार नहीं किया। उनका जीवन भगवान की ओर बड़े वेग से बहने वाला एक सतत प्रवाह था। उन्होंने भगवान् के चरणों का सर्वतोभावेन आश्रय ले लिया था। उनका चित्त सदा नारायण के चिन्तन में लीन रहता था। उनका हृदय भगवन का मन्दिर बन गया था। उनकी वाणी केवल भगवान के ही गुणों का गान करती थी। उनके चरण भगवान की ही मन्दिर के प्रदक्षिणा करते थे। उनके हृदय से केवल भगवत्प्रेम के उद्गार निकलते थे। उनके नेत्र सर्वत्र सब में और सभी घटनाओं और परिस्थितियों में एकमात्र नारायण का ही दर्शन करते थे। उनके हाथ भगवान नारायण को ही पुष्पाञ्जली चढ़ाते थे। उनकी आत्मा का नारायण के साथ परिणय हो गया था। उनका जीवन भगवान नारायण का ही उच्छ्वास बन गया था। वे स्वमी, पिता, सृहृद, प्रियतम तथा पुत्र के रूप में नारायण को ही भजते थे और नारायण से ही प्रेम करते थे।

'सोऽहम्' के 'सः' और 'अहम्' दोनों उस एक के अन्दर दूध और चीनी की भाँति घुल-मिलकर एक हो गये हैं। मेरा हृदय स्वप्न में भी उनका साथ नहीं छोड़ता। जब तक मैं अपने स्वरूप से अनभिज्ञ था तब तक मैं और मेरे के भाव को ही पुष्ट करता रहता था; परन्तु अब मैं देखता हूँ कि तुम्हारा सर्वथा दास हूँ। मेरा सब कुछ तुम्हारा है, अतः हे प्रभो! मेरे चित्त को डुलाओ नहीं, उसे सदा अपने पाद-पद्मों से दृढ़तापूर्वक चिपटाये रखो। भाईयो! भगवान का ही स्मरण करो। श्रीकृष्ण का ही गुणगान करो। धनियों की स्तुति करके अपनी वाणी का दुरुपयोग न करो। भगवान् नारायण का प्रेमरूपी दिव्य सुमन से नित्य अर्चन करो। जगत् का रचयिता वही है, यही नहीं, स्वयं जगत् भी वही है। वही जगदीश्वर है। उनके सहस्त्रनामों का उच्चारण करो। तुम्हारे अमङ्गल नष्ट हो जाएँगे। उसका दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ है, किन्तु भक्तों के लिए वह अत्यन्त सुलभ है। हे जगत् के जीवों! यदि तुम मुक्ति का आनन्द लूटना चाहते हो तो उसी से प्रेम करो। आलवारों का जीवन तथा उनकी वाणी इसी ढंग की थी। भारत के १०८ मुख्य वैष्णव मन्दिरों में राम, कृष्ण, नारायण, नृसिंह आदि जिन-जिन विग्रहों की पूजा होती है उन्होंने उन सबका गुणगान किया है।

आलवारों का जीवन-काल ईस्वी सन् की सातवीं शताब्दी से लेकर ९वीं शताब्दी पर्यन्त

माना जाता है। इनके पदों का संग्रह तथा प्रचार श्रीनाथमुनि द्वारा हुआ जो स्वयं बड़े भक्त और विद्वान् थे और इनके द्वारा निरूपित प्रपत्तिमार्ग को एक निश्चित रूप देकर उसका जगत् में प्रचार श्रीरामानुजाचार्य जी ने किया। जिन्हें भगवान ने इसी कार्य के लिए भेजा था। वैष्णव शास्त्रों में यह बात कही गयी है कि भगवान् महाविष्णु ने इन आलवारों के रूप में अपने ही श्रीवत्स, कौस्तुभ, वैजयन्ती, वनमाला, श्री भू-नीला देवियों, अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेन, सुदर्शन-चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग और शार्ङ्ग धनुष आदि को संसार में भक्ति मार्ग का प्रचार करने के लिए भेजा था। ये आवलार सन्त भिन्न-भिन्न जातियों में उत्पन्न हुए थे; परन्तु सन्त होने के नाते उन सबका समान रूप से आदर है; क्योंकि इन्हीं के कथनानुसार सन्तों का एक अपना ही कुटुम्ब होता है, जो सदा भगवान में स्थिर रहकर उन्हीं नामों का कीर्तन करता रहता है। वास्तव में नीच वही है जो भगवान नारायण की प्रेम सहित पूजा नहीं करते। इन सन्त कवियों के चार हजार पद्य 'दिव्य प्रबन्ध' नामक ग्रन्थ में संगृहीत है जो ज्ञान, प्रेम, सौन्दर्य, समता और आनन्द से ओत-प्रोत अध्यात्मज्ञान का एक अमूल्य खजाना है। वे वेद मन्त्रों के समान पवित्र और मुक्तिरूपी गङ्गा को बहाने वाले और जहाँ कहीं आज भी वे भक्तों द्वारा गाये जाते हैं वहाँ भगवत्सामीपप्य के आनन्द का अनुभव होता है एवं सब प्रकार के उत्सवों, धार्मिक कृत्यों तथा पूजाओं में एक स्वर से 'तिरुवाँयमोडी' नामक दिव्य प्रबन्ध को गाते हैं, जिसका अर्थ तामिल (तमिल) भाषा में सन्तों के पवित्र मुख से निकली हुई दिव्य वाणी है।

●

## *विवाहादि-विमर्श*

पुत्र विवाह के छः मास के अन्दर उसी वर्ष कन्या का विवाह नहीं करें। कन्या के विवाह के बाद छः मास के अन्दर पुत्र का विवाह करने में कोई दोष नहीं है।

पुत्र या पुत्री के विवाह के छः मास के अन्दर उसी वर्ष में मुण्डन उपनयनादि भी न करें।

(१) दो सहोदर भाईयों का सहोदर बहनों से विवाह न करें।

(२) एक व्यक्ति से दो सहोदर बहनों का विवाह न करें। दो सहोदर बहनों या दो सहोदर भाईयों का विवाह छः मास के भीतर नहीं होना चाहिए।

(३) तीन सहोदर भाईयों या बहनों का विवाहादि शुभकर्म एक मण्डप में वर्जित है। दूसरे मण्डप में हो सकता है। यदि सहोदर तीन भाई तीन बहन नहीं हो तो उनका एक मण्डप में विवाहादि शुभ कर्म करने में दोष नहीं है।

विवाह से छः मास के भीतर मुण्डन और व्रतबन्ध से छः मास के भीतर मुण्डन तीन पीढ़ी तक के कुल में नहीं करना चाहिए। वधू प्रवेश के छः मास तक कन्या की विदाई नहीं करनी चाहिए।

ooo

# वामन के कृपापात्र बलि

**( सहस्रगीति के प्रथम शतक से )**

जब भगवान ने वामन का रूप धारण कर महादानी बलि के यज्ञमण्डप में पधारकर उससे तीन पग भूमि को माँग लिया, तब परमोदार वह असुर सार्वभौम भी उस वामन मूर्ति के रूप व मीठी वाणी का परवश होकर दान देने को तैयार हो गया; परन्तु उतने में उसके गुरु शुक्राचार्य ने समझ लिया कि यह तो बलि के सर्वस्व का ही हरण कर देवताओं को सौंपने आये हुए साक्षात् भगवान ही हैं, अत: उसने बलि को दान देने के लिए रोका।

बलि ने शुक्राचार्य से कहा कि गुरुदेव आप स्वयं धर्मविरोधी चर्चा न करें, जब स्वयं विष्णु ही अतिथि या याचक बने हैं तो इससे बढ़कर दूसरा श्रेय क्या हो सकता है? विद्वदगण विष्णु की प्रसन्नता के लिए ही यज्ञ करते हैं। यदि मेरे यज्ञ में वही साक्षात् विष्णु हवि के भोक्ता बन जायें तो मुझसे बढ़कर संसार में और दूसरा कौन भाग्यवान होगा। करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी वामन के चरणों को बलि धोया और भगवान के चरणोदक को अपरे शिर पर चढ़ाकर परम आनन्द प्राप्त किया। भगवान ने कहा तीन पग भूमि मुझे दे दो। बलि यह सुनकर प्रसन्न हो गया। भूमिदान देने के लिए बलि ने हाथ में अक्षत, कुश सुपारी आदि लेकर उसमें जल लेने के लिए झारी पकड़ा। शुक्राचार्य को यह बात समझ में आ गयी कि सङ्कल्प के लिए अक्षत के साथ जल आवश्यक है। जल के विना सङ्कल्प सही नहीं होता। वलि अज्ञानवश समझ नहीं रहा है। सङ्कल्प के बाद वामन ने विराट बनकर बलि की पूरी सम्पत्ति को ग्रहण कर लेगा। अत: ऐसा उपाय करुँ कि बलि ठगाए नहीं। एतदर्थ शुक्राचार्य ने छोटा बनकर जल गिरने के रास्ता पर जकड़ गये। वे सबकी नजर से छिपे हुए थे। भगवान वामन ने उनके छल को समझ लिया। अत: उन्होंने एक नोकिला कुश लेकर जल गिरने वाला रास्ता पर छिपे हुए शुक्राचार्य के एक नेत्र पर दे मारा। भगवान ने शुक्राचार्य को एक नेत्र विहीन कर भाव प्रकट किए कि अब ये देव दानव दोनों को एक दृष्टि से देखेंगे।

तदनन्तर बलि झारी के जल का संयोग अक्षत से हो गया, बलि ने भगवान वामन की बात मानकर तीन पग भूमि देने के लिए सङ्कल्प कर दिया। सङ्कल्प का अक्षत भगवान लेकर त्रिविक्रम बन गए। एक डेग (पग) में समस्त भूमि को नाप लिए और दूसरा पद ब्रह्मा के सत् लोक में पहुँच गया। ब्रह्मा ने भगवान के दिव्य चरण कमल को पहचान लिया। उन्होंने कमण्डल से जल निकालकर भगवान के चरण-कमल को धोया और उसे कमण्डल में रख लिया। तृतीय बार भगवान के दिव्य चरणकमल को बलि ने अपने सिर पर धारण कर लिया। अत एव नवधा भक्ति में आत्मसमर्पण भक्ति के उदाहरण राजा बलि माने गये हैं।

# दिव्योपदेश

भगवान वाराह द्वारा हिरण्याक्ष की मृत्यु के बाद शोक सन्तप्त उनके परिवारों से हिरण्यकशिपु ने कहा कि कहीं विशेष स्थल में लोग इकट्ठे हो जाते हैं; परन्तु उनका मिलना-जुलना थोड़ी देर के लिए ही होता है, वैसे ही अपने कर्मों के फेर से दैववश जीव भी मिलते और बिछुड़ते हैं। वास्तव में आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध सर्वगत, सर्वज्ञ और देह इन्द्रिय आदि से पृथक् है। वह अपनी अविद्या से ही देह आदि की सृष्टि करके भोगों के साधन सूक्ष्म शरीर को स्वीकार करता है। जैसे हिलते हुए पानी के साथ उसमें प्रतिविम्बित होने वाले वृक्ष भी हिलते-से जान पड़ते हैं और घूमायी जाती हुई आँखों के साथ सारी पृथ्वी ही घूमती-सी दिखायी देती है, कल्याणि! वैसे ही विषयों के कारण मन भटकने लगता है और वास्तव में निर्विकार होने पर भी उसी के समान आत्मा भी भटकता हुआ-सा जान पड़ता है। उसका स्थूल और सूक्ष्म शरीरों में कोई भी सम्बन्ध नहीं है फिर भी वह सम्बन्धी-सा जान पड़ता है। सब प्रकार से शरीर रहित आत्मा को शरीर समझ लेना यही तो अज्ञान है। इसी से कर्मों के साथ सम्बन्ध हो जाने के कारण संसार में भटकना पड़ता है। जन्म, मृत्यु अनेक प्रकार के शोक, अविवेक, चिन्ता और विवेकों की विस्मृति सबका कारण यह अज्ञान ही है। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास है। वह इतिहास मरे हुए मनुष्य के सम्बन्धियों के साथ यमराज की बातचीत है। तुमलोग ध्यान से सुनो—

उशीनर देश में एक बड़ा यशस्वी राजा था। उसका नाम था सुयज्ञ। लड़ाई में शत्रुओं ने उसे मार डाला। उस समय उसके भाई-बन्धु उसे घेरकर बैठ गये। रानियों को दैववश अपने पतिदेव उशीनर नरेश की यह दशा देखकर बड़ा दुःख हुआ। वे हा नाथ! हम अभागिनें तो वेमौत मारी गयीं। यों कहकर बार-बार जोर से छाती पीटती हुई अपने स्वामी के चरणों के पास गिर पड़ी। उनके केश और गहने इधर-उधर विखर गये। वे करुण-क्रन्दन के साथ विलाप कर रहीं थीं, जिसे सुनकर मनुष्यों के हृदय में शोक का सञ्चार हो जाता था। हाय! विधाता बड़ा क्रूर है। स्वामिन! उसी ने आज आपको हमारी आँखों से ओझल कर दिया। पहले तो आप समस्त देशवासियों के जीवन दाता थे। आज उसी ने आपको ऐसा बना दिया कि आप हमारा शोक बढ़ा रहे हैं। पतिदेव! आप हमसे बड़ा प्रेम करते थे, हमारी थोड़ी-सी सेवा को बड़ी करके मानते थे। हाय! अब आपके बिना हम कैसे रह सकेंगी। हम आपके चरणों की चेरी हैं। वीरवर! आप जहाँ जा रहे हैं, वहीं चलने को हमें भी आज्ञा दीजिये। वे अपनी पति की लाश पकड़कर उसी प्रकार विलाप करती रहीं। उस मूर्दे को वहाँ से दाह के लिए जाने देने की उनकी इच्छा नहीं होती थी। इतने में ही सूर्यास्त हो गया। उस समय उशीनर राज के सम्बन्धियों ने जो विलाप किया था, उसे सुनकर वहाँ स्वयं यमराज बालक के वेष में आये और उन्होंने उन लोगों से कहा।

यमराज बोले—बड़े आश्चर्य की बात है। ये तो मुझसे सयाने हैं, बराबर लोगों का मरना-जीना देखते हैं, फिर भी इतने मूढ़ हो रहे हैं। अरे! यह मनुष्य जहाँ से आया था, वहीं चला गया। इन लोगों को भी एक न एक दिन वहीं जाना है फिर झूठमूठ ये लोग इतना शोक क्यों करते हैं? हम तो तुमसे लाख गुने अच्छे हैं, परम धन्य हैं; क्योंकि हमारे माँ-बाप ने हमें छोड़ दिया है। हमारे शरीर में पर्याप्त बल भी नहीं है, फिर भी हमें कोई चिन्ता नहीं है। भेड़िये आदि हिंसक जन्तु हमारा बाल भी

बाँका नहीं कर पाते। जिसने गर्भ में रक्षा की थी, वही इस जीवन में भी हमारी रक्षा करता रहता है। देवियो! जो अविनाशी ईश्वर अपनी मौज से इस जगत् को बनाता है, रखता है और बिगाड़ देता है उस प्रभु का यह एक खिलौना मात्र है। वह इस चराचर जगत् को दण्ड या पुरस्कार देने में समर्थ है। भाग्य अनुकूल हो तो रास्ते में गिरी हुई वस्तु ज्यों की त्यों पड़ी रह जाती है; परन्तु भाग्य के प्रतिकूल होने पर घर के भीतर तिजोरी में रखी हुई वस्तु भी खो जाती है। जीव बिना किसी सहारे के दैव की दया दृष्टि से जङ्गल में भी बहुत दिनों तक जीवित रहता है; परन्तु दैव के विपरीत होने पर घर में सुरक्षित रहने पर भी मर जाता है।

रानियो! सभी प्राणियों की मृत्यु अपने पूर्व जन्मों की कर्म वासना के अनुसार समय पर होती है और उसी के अनुसार उनका जन्म भी होता है; परन्तु आत्मा शरीर से अत्यन्त भिन्न है, इसलिए वह उसमें रहने पर भी उसके जन्म-मृत्यु आदि धर्मों से अछूता ही रहता है, जैसे मनुष्य अपने मकान को अपने से अलग और मिट्टी का समझता है, वैसे ही यह शरीर भी अलग और मिट्टी का है। मोहवश वह इसे अपना समझ बैठता है। जैसे बुलबुले आदि पानी के बिकार, घड़े आदि मिट्टी के विकार और गहने आदि स्वर्ण के विकार समय पर बनते हैं, रूपान्तरित होते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही इन्हीं तीनों विकार से बना हुआ यह शरीर भी समय पर बन-बिगड़ जाता है। जैसे काठ में रहने वाली व्यापक अग्नि स्पष्ट ही उससे अलग है, जैसे देह में रहने पर भी वायु का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे आकाश सब जगह एक-सा रहने पर भी किसी दोष गुण से लिप्त नहीं होता वैसे ही समस्त देहेन्द्रियों में रहने वाला और उनका अक्षय आत्मा भी उनसे अलग और निर्लिप्त है।

मूर्खों! जिसके लिए तुम सब शोक कर रहे हो वह सुयज्ञ नामक शरीर तो तुम्हारे सामने पड़ा है। तुम लोग इसी को देखते थे, इसी में जो सुनने वाला और बोलने वाला था, वह तो कभी किसी को नहीं दीखायी पड़ता था, फिर आज भी नहीं दिखायी दे रहा है, तो शोक क्यों? (तुम्हारी यह मान्यता है कि 'प्राण ही बोलने या सुनने वाला था, सो निकल गया' मूर्खतापूर्ण है; क्योंकि सुषुप्ति के समय प्राण तो रहता है; परन्तु न वह बोलता है न सुनता है) शरीर में सब इन्द्रियों को चेष्टा का हेतुभूत जो महाप्राण है, वह प्रधान होने पर भी बोलने या सुनने वाला नहीं है; क्योंकि वह जड़ है। देह और इन्द्रियों के द्वारा सब पदार्थों का द्रष्टा जो आत्मा है वह शरीर और प्राण दोनों से पृथक् है। यद्यपि वह परिच्छिन्न नहीं है, व्यापक है फिर पञ्चभूत, इन्द्रिय और मन से युक्त नीचे-ऊँचे (देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि शरीरों को ग्रहण करता और अपने विवेक बल से मुक्त भी हो जाता है। वास्तव में वह इन सबसे अलग है। जब तक वह पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और मन–इन सत्रह तत्त्वों से बने हुए लिङ्ग शरीर युक्त रहता है, तभी तक वह कर्मों से बन्धा रहता है और इस बन्धन के कारण ही माया से होने वाले मोह और क्लेश बराबर उनके पीछे पड़े रहते हैं।

प्रकृति के गुणों और उनसे बनी हुई वस्तुओं को सत्य समझना अथवा कहना झूठमूठ का दुराग्रह है। मनोरथ से समय को कल्पित और स्वप्न के समय ही दीख पड़ने वाली वस्तुओं के समान इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ ग्रहण किया जाता है वह सब मिथ्या है। इसलिए शरीर और आत्मा का तत्त्व जानने वाले पुरुष न तो अनित्य शरीर के लिए शोक करते हैं और न नित्य आत्मा के लिए ही। अत एव ज्ञान की दृढ़ता न होने के कारण जो लोग शोक करते रहते हैं, उनका स्वभाव बदलना बहुत कठिन है।

# गुरु-शिष्य-संवाद

**शिष्य**—गुरुदेव! आत्मा में सच्ची शान्ति कैसे मिलती है?

**गुरुजी**—जीवात्मा में सच्ची शान्ति परमात्मा को प्राप्त करने पर आ सकती है। विना शान्ति का सच्चा सुख नहीं मिलता और उसके लिए परमात्मा ही एक साधन हैं।

**शिष्य**—गुरुदेव! परमात्मा को जानने के लिए कौन-सा साधन है?

**गुरुजी**—वेदों, संहिताओं, पुराणों, धर्मशास्त्रों और इतिहासों के सारतम सिद्धान्त है कि परमात्मा को प्राप्त करने के लिए श्रीवैष्णव अवश्य होना चाहिए।

**शिष्य**—गुरुदेव! भगवान् विष्णु जगत् के सृजन करने के कारण सबके पिता हैं, सभी जीव उनके पुत्र हैं, अतः सम्पूर्ण जगत् वैष्णव ही हैं, फिर वैष्णव बने विना परमात्मा प्राप्त नहीं होते हैं, इसका क्या भाव है?

**गुरुजी**—जैसे सरकार के राज्य में रहने वाली साभी प्रजा को सरकारी व्यक्ति नहीं समझा जाता है। सरकारी व्यक्ति तो वही कहा जाता है जो सरकारी पद पर नियुक्त होकर नियमानुकूल उसकी आज्ञा का पालन करता है। वैसे ही शास्त्रों का संविधान है कि पञ्च संस्कार पूर्वक शास्त्रीय नियमों का पालन (भगवान की उपासना) करने वाले को ही वैष्णव कहते हैं।

**शिष्य**—गुरुदेव! पञ्च संस्कार कौन-कौन हैं?

**गुरुजी**—१. गुरु द्वारा दोनों भुजाओं में शङ्ख-चक्र का धारण करना (दोनों भुजाओं में शङ्ख-चक्र से चिह्नित होना)। २. उर्ध्वपुण्ड्र चन्दन लगाना। ३. भगवान् के नामों में से किसी नाम को रखना। ४. मूल मन्त्र (अष्टाक्षर) द्वय मन्त्र तथा चरम मन्त्र को ग्रहण करना। ५. गुरु के माध्यम से भगवान के चरणों में दीन-हीन अकिञ्चन बनकर अपने आपको समर्पित कर देना।

**तापः पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।**
**अमी ते पञ्चसंस्काराः पारमैकान्त्य हेतवः।।**

**अर्थ**—तप्त शङ्ख-चक्र, उर्ध्वपुण्ड्रतिलक, नाम, मन्त्र और पाँचवाँ भाग (भगवान की शरणागति) ये ही पाँचों संस्कार परम ऐकान्तिक भगवत् प्राप्ति मोक्ष के साधन हैं।

**शिष्य**—गुरुदेव! तप्त शङ्ख-चक्र भुजाओं में धारण करने पर ही वैष्णव होता है ऐसा प्रमाण मिलता है क्या?

**गुरुजी**—अनेक प्रमाण मिलते हैं, सभी प्रमाणों को देने में एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो जायेगा। अतः एक दो ही प्रमाण सामने रखता हूँ।

**आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कणं हरेः।**
**धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः।।**
(पद्मपुराण)

**अर्थ**—भुजाओं में तप्त शङ्ख-चक्र का चिह्न धारण करना ही वैष्णावता है। साथ ही उर्ध्वपुण्ड्र-तिलक तथा श्रीविष्णु का मन्त्र धारण करें।

**आद्यं तु शङ्ख-चक्रादि धारणं वैष्णवं स्मृतम्।**
(पराशर)

**अर्थ**—शङ्ख-चक्रादि धारण करने वाले को ही वैष्णव कहते हैं।

**शिष्य**—गुरुदेव! जो विना वैष्णव बने ही भगवान् का भजन करता है, उसे भगवान् नहीं मिलेंगे?

**गुरुजी**—पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में श्रीशङ्कर जी ने कहा कि भगवान को प्राप्त करने के लिए सोलह प्रकार की भक्तियाँ की जाती है—

१. श्रीविष्णु के आयुध शङ्ख-चक्र धारण करना।
२. उर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण करना।

३. श्रीविष्णु के मन्त्रों का ग्रहण करना।
४. विष्णु की पूजा करना।
५. भगवन्नाम का जप करना।
६. भगवान् का ध्यान करना।
७. भगवान् के स्वरूप का स्मरण करना।
८. भगवन्नाम का सङ्कीर्तन करना।
९. भगवान की कथा सुनना।
१०. उन्हें प्रणाम करना।
११. भगवान के चरण की सेवा करना।
१२. उनका चरणोदक (तीर्थ) लेना।
१३. भगवान को अर्पण करके (भोग लगाकर) भोजन करना।
१४. भगवद्भक्त श्रीवैष्ण की सेवा करना।
१५. द्वादशी प्रधान एकादशी व्रत करना।
१६. तुलसी रोपना।

इन सोलह प्रकार की भक्तियों में शङ्ख-चक्र की प्राथमिकता दिये हैं। ऐसे और भी प्रमाण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि भगवान् के निमित्त जो भी कर्म करें चक्राङ्कित (वैष्णव) होकर ही करें। अन्यथा पूजा का समुचित फल नहीं मिलता है।

**शिष्य**—जो वैष्णव नहीं हैं, वे श्रीमद्भागवत के प्रधान श्रोता तक बनने के अधिकारी नहीं हैं, फिर वक्ता अर्थात् वाचक कैसे बन सकते हैं; क्योंकि श्रीव्यास जी ने लिखा है—

**विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे।**
**विरक्त वैष्णवो विप्रो वेदशास्त्रविशुद्धि कृत्।**
**दृष्टान्त कुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः।।**

**गुरुजी**—सुनो जी! श्रीविष्णु पुराण में लिखा हुआ है कि यमराज ने अपने दूतों के हाथों में पाश लिये देखकर उनके कान में कहा कि भगवान मधुसूदन के शरणागत व्यक्तियों को छोड़ देना; क्योंकि मैं वैष्णवों का स्वामी नहीं हूँ। उनके स्वामी भगवान हैं। जो वैष्णव नहीं है, उन्हें ही पकड़कर यमलोक में लाना। वैष्णव विष्णुलोक में जाते हैं।

**शिष्य**—गुरुदेव! इन बातों को सुनने से स्पष्ट झलकने लगा है कि वैष्णव बने विना जीव का किसी प्रकार कल्याण नहीं होता है। जो सत्य सुख चाहता है उसे भगवान विष्णु के शरण में अवश्य आना चाहिए।

**गुरुजी**—इतना ही नहीं और सुनो–जो वैष्णव हो जाता है उसका कुल पवित्र हो जाता है। ऐसा माना गया है। कुल को पवित्र करने का यही एक साधन है। विद्या, बुद्धि, बल, धन आदि किसी से कुल पवित्र नहीं होता है।

वैष्णव होने पर मातृ-पितृ-ऋण से उद्धार हो जाता है; क्योंकि वैष्णव होने पर माता-पिता को भी परलोक मिलता है। पृथ्वी का भार कम हो जाता है। पृथ्वी भगवान विष्णु की पत्नी है। अत एव—

**विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यम्०।**

ऐसा कहकर उसे प्रणाम किया जाता है। इसे समुद्र, पहाड़, जङ्गल, नदी आदि का गुरुत्व कष्ट नहीं देता है, कष्ट वही देता है जो वैष्णव नहीं है। उसका भार पृथ्वी सहन नहीं करती है। यही कारण है कि वैष्णव होने पर वसुन्धरा अपने को धन्य-धन्य मानती है। वैष्णव के पितर गण जहाँ रहते हैं वहीं आनन्द मनाते हैं और कहते हैं कि हमारे कुल में वैष्णव हो गया, अब हमलोग को वैकुण्ठ प्राप्त हो जायेगा।

**कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।**
**स्वर्गस्थिताहिपितरश्च धन्याः येषां कुले वैष्णवनामधेयम्।**
**अस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः।**
**वैष्णवो मे कुले जातः स नः संतारयिष्यति।।**

और सुनो—शुद्ध वैष्णव के आश्रय में रहने वाले पशु-पक्षी आदि का भी कल्याण हो जाता है।

**पशुर्मनुष्यः पक्षी वा ये च वैष्णवसंश्रयाः ।**
**तेनैव ते प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।।**

**शिष्य**—गुरुदेव! इन उपदेशामृतों को सुनने से हृदय आनन्द से भर गया। ऐसा शास्त्र के सारतम रहस्य बतलाने वाले गुरु बहुत कम मिलते हैं। आज तो अधिक गुरु वैसे ही मिलते हैं जो शास्त्र-ज्ञानशून्य भगवान के चरणों में प्रेम भी नहीं रखते हैं। वैसे शास्त्र-ज्ञान विहीन एवं भगवद् भक्ति रहित गुरुओं से जीव का कल्याण कैसे हो सकता है? वे तो स्वयं माया के बन्धन में पड़े रहते हैं और शिष्यों को भी संसार में भ्रमाते रहते हैं। जिन देवताओं को मोक्ष (सच्चा सुख) देने का अधिकार ही नहीं है, उनकी उपासना में स्वयं लगे रहते हैं और शिष्यों को भी उसी ओर लगाये रहते हैं। वैसे ही गुरु के लिए मानसकार ने लिखा है—

**हरइ शिष्य धन शोक न हरई ।**
**सो गुरु घोर नरक महँ परई ।।**

**गुरुजी**—अब तुम कल्याण का सही मार्ग समझ गया। इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

**शिष्य**—गुरुदेव! इतना उत्तम मार्ग को जीव क्यों छोड़ देता है?

**गुरुजी**—भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'हजारों मनुष्यों में कोई-कोई ही मुझ (भगवान) को प्राप्त करने का उपाय करता है और उपाय करने वालों में कोई-कोई मुझे यथार्थ रूप से समझता है। प्रायः सांसारिक मनोरथों को पूरा करने के लिए अन्य उपायों (अन्य देव उपासनाओं) में ही लगे रह जाते हैं। सभी लोक तथा परलोक के विशेष सुख देने वाला मैं ही हूँ; परन्तु माया से मोहित होने के कारण जीव मेरी शरण में विश्वास पूर्वक नहीं आता।

**शिष्य**—गुरुदेव! जो अज्ञान वश संसार में भटकाने वाले किसी गुरु से दूसरे देवता का मन्त्र ले लिया है और वैष्णव नहीं हुआ है, उसे क्या करना चाहिए?

**गुरुजी**—वैसे व्यक्ति को फिर से उत्तम वैष्णव गुरु से मन्त्र लेना चाहिए। शास्त्र कहता है—

**अवैष्णवोपदिष्टं च पूर्वमन्त्रं परित्यजेत् ।**
**पुनश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद् ग्राह्येन्मनुम् ।।**
(पद्मपुराण)

भाव यह है कि अवैष्णव के द्वारा उपदेश दिये गये पूर्व मन्त्र का परित्याग कर दे और फिर विधि पूर्वक श्रीवैष्णव से मन्त्र ग्रहण करे।

**शिष्य**—गुरुदेव! शास्त्रों में लिखित भगवन्मन्त्रों को याद कर जपने से भी तो कल्याण हो सकता है फिर गुरु के द्वारा पञ्चसंस्कार क्यों कराया जाय? (गुरु क्यों बनाया जाय)?

**गुरुजी**—शास्त्रों में लिखित मन्त्रों को याद करके जपने से आजतक न किसी का कल्याण हुआ और न ही हो सकता है। अत एव शास्त्र का वचन है—

**'गुरुमेवाभिगच्छेत्०'** (उपनिषद्)

**भवेद् दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः ।**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ।।**

इसी भाव से मानसकार ने लिखा है—

**विन गुरु भव निधि तरइ न कोई ।**
**जो विरञ्चि सङ्कर सम होई ।।**

यहाँ एक उदाहरण लो—जैसे कानून की पुस्तक पढ़कर जिस किसी व्यक्ति के द्वारा 'इसने अपराध किया है, अतः ऐसा दण्ड मिलना चाहिए' ऐसा कहने पर अपराधी को दण्ड नहीं मिलता है; किन्तु अधिकार प्राप्त न्यायाधीश उसी अपराध का दण्ड-निर्णय करता है, तो अपराधी को दण्ड भोगना पड़ता है। वैसे ही अधिकारी गुरु के द्वारा प्राप्त मन्त्र के जपने से ही सिद्धि मिलती है। स्वयं पुस्तक के मन्त्रों को याद कर या अनधिकारी से प्राप्त कर जपने से कल्याण नहीं होता है।

# मातृ देवी भव, पितृ देवी भव

सबसे पहला महान् उपकार होता है–माता का, जिसके द्वारा यह शरीर प्राप्त होता है, बढ़ता है, पुष्ट होता है और कार्यक्षम बनता है। माता को साढ़े नौ महीने तक गर्भस्थ शिशु को कितने कष्ट से उदर में रखना पड़ता है, उसके रक्षण और पोषण के लिये कितना सतर्क रहना पड़ता है, यह भुक्त-भोगी माता ही जानती है। बच्चे के जन्म के समय की प्रसव-वेदना कितने भयङ्कर रूप में भोगनी पड़ती है। उस विषम अवसर पर कई माताएँ तो अपने प्राणों की बलि तक भी चढ़ा देती हैं, यह सभी अच्छी तरह से जानते हैं। जन्म के बाद बच्चे के पालन-पोषण में भी माता को कितना कष्ट उठाना पड़ता है। रात-रात भर जागना पड़ता है। उसके मल-मूत्र को साफ करने में घृणा और देरी नहीं की जा सकती। जननी स्वयं गर्मी-सर्दी सहन करती है, पर बच्चे को तनिक भी गर्मी-सर्दी न लग जाय, इसका पूरा ध्यान रखती है। उसे अपने खाने-पीने में भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है, इच्छाओं पर रोक लगानी पड़ती है। शिशु कहीं गिर न जाय, उसे कोई दु:ख दर्द न हो, इसकी भी वह पूरी सावधानी रखती है। ऐसी जन्मदात्री एवं लालन-पोषण करने वाली माँ के उपकार को भी बड़े होने पर बच्चे भूल जाते हैं, यह सबसे बड़ी कृतघ्नता है। आजकल आधुनिक शिक्षा के प्रवाह में बहने वाले युवक तो यहाँ तक कह देते हैं कि 'इसमें उपकार की क्या बात हुई, अपने मोह के कारण ही वह सब काम करती है।

माँ के बाद दूसरा स्थान पिता का है। घर का सारा खर्च दिन भर परिश्रम करके और खोटे-खटे काम करके पिता किसी तरह चलाते हैं। अपने बच्चों को अच्छा खाना-कपड़ा मिले, वे अच्छी तरह पढ़ाई-लिखाई करके होशियार बने, इसलिए पिता को अत्यधिक प्रयत्न करना पड़ता है। पर जब बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बन जाता है, तब वह माता-पिता की अवहेलना करना प्रारम्भ कर देता है। कुछ लोग तो अपने माता-पिता को मारते-पीटते तक हैं। उनको समय पर अच्छा खाना नहीं देते, रोगी होने पर न ठीक से इलाज करवाते हैं और न सेवा-शुश्रूषा ही करते हैं। माता-पिता ने उनको इतने वर्षों तक पालन-पोषण कर योग्य बनाया, इस बात को भूलकर बहुत से नवयुवक अपनी पत्नी के इतने वशीभूत हो जाते हैं कि माता-पिता को अनेक प्रकार से कष्ट देने में भी वे नहीं हिचकिचाते। पिता की सम्पत्ति के वे मालिक तो बन जाते हैं, पर उनकी उचित सार संभाल से मुख मोड़ लेते हैं। चाहे वे सेवा न करें, पर उनका अपमान तो नहीं ही करना चाहिए। सन्तान माता-पिता के उपकारों को मानती रहे और उसे प्रकट करती रहे–यह भी आज के युग में बहुत बड़ी बात समझी जाती है।

प्राचीन काल में प्रात: उठते ही माता-पिता को नमस्कार करना, उनकी आज्ञा का पालन करना, उनको हर तरह से सुख पहुँचाना, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझता था। आज के अनेक युवक उच्च पदाधिकारी हो जाने पर अपने साधारण वेष-भूषा वाले और मामूली पढ़े-लिखे माता-पिता को दूसरों के सामने नमस्कार करने तथा उनका समादर करने में सङ्कोच का अनुभव करते हैं। ऐसे 'सपूतों' से सेवा की क्या आशा रखी जाय?

तीसरा उपकार पारिवारिक जनों या गुरु जनों का होता है, जो बच्चों को हर तरह की सुविधा एवं शिक्षा देकर उनके जीवन को सुसंस्कृत एवं सफल बनाने में सहयोग देते हैं। जीवन-निर्माणकारी उन

शिक्षाओं को भूलकर जो व्यक्ति गुरुजनों के प्रति आदर का भाव नहीं रखते ऐसे युवकों की कहानियाँ तो आज सर्वत्र चर्चा का विषय बनी हुयी है। आज तो स्थिति इतनी विषम हो चुकी है कि विद्यार्थी अध्यापकों और सर्वोच्च शिक्षा अधिकारियों तक को मार-पिट देते हैं और कुलपतियों तक का घेराव कर बैठते हैं। उनके वचनों का निरादर करने और प्रतिवाद करने में ही अपनी शान समझते हैं, शेखी बघारते हैं। वे विद्यालयों को नुकसान पहुँचाने में भी कमी नहीं रखते। उत्तेजना और आवेश में न करने योग्य हत्याएँ तक कर बैठते हैं। यह स्थिति बड़ी ही भयानक एवं लज्जाजनक है। विद्यार्थी-समुदाय हमारे ही बच्चे हैं, हम उनकी त्रुटियाँ नहीं बता रहे हैं। केवल वस्तु स्थिति पर विचार कर रहे हैं।

धर्म-गुरुओं का भी जीवन में महान् उपकार होता है, जो हमें बुराइयों से बचाते हुए सदगुणों के विकास और नैतिक उत्थान की निरन्तर प्रेरणा देते रहते हैं, जिससे मानव अनेक दु:खों और पापों से बचते हुए इहलोक और परलोक का महान् हित-साधन करने में समर्थ होता है, ऐसे धर्म-गुरुओं के प्रति भी आदर और श्रद्धा की कमी बहुत ही खटकने वाली है।

इसी तरह जीवन में न जाने कितने लोगों ने हमारे कितने उपकार किये हैं? किसी ने आर्थिक सहयोग दिया, किसी ने सत्परामर्श दिया, सद्बुद्धि दी तथा किसी ने रुग्नावस्था और कष्ट के समय सेवा-सहायता की। इस प्रकार हम पर हुए उपकारों का सही या पूरा लेखा-जोखा लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि यह सारा जीवन ही दूसरों के सहयोग पर आधारित एवं निर्भर है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपने में कृतज्ञता के सद्गुण का भण्डार उत्तरोत्तर विकसित करते जाना चाहिए, अन्यथा कृतघ्नता सर्वत्र व्याप्त हो जायेगी और इससे बड़ा कोई भी पाप नहीं है।

प्रत्युपकार की कामना सबके मन में होती है, पर आश्चर्य यह है कि वे ही व्यक्ति दूसरों के उपकार को स्वयं भूल जाते हैं, फिर अकृतज्ञता के प्रवाह में उनके उपकार को कौन याद रखेगा? आप दूसरों को सम्मान देंगे तो आपको भी सम्मान प्राप्त होगा। आप दूसरों के कृतज्ञ रहेंगे तो दूसरे भी आपके प्रति सद्भाव रखेंगे। यदि दूसरे व्यक्ति कृतघ्न हो जाते हैं तो भी सत्पुरुषों को तो उसकी ओर से उदासीन रहते हुए अपने भावों में और व्यवहार में परोपकार, सेवा-सहायता एवं कृतज्ञता को कम नहीं होने देना चाहिए।

एक उच्च कोटि के सन्त का कथन सर्वथा ध्यान देने योग्य है—'दूसरे के द्वारा तुम्हारा तनिक-सा भी उपकार या भला हो अथवा तुम्हें सुख पहुँचे तो उसका हृदय से उपकार मानो, उसके प्रति कृतज्ञ बनो, यह मत समझो कि 'यह काम मेरे प्रारब्ध से हुआ है, इसमें उसका मेरे ऊपर क्या उपकार है, वह तो निमित्त मात्र है'। बल्कि यह समझो कि उसने निमित्त बनकर तुम पर बड़ी ही दया की है। उसके उपकार को जीवन-भर स्मरण रखो, स्थिति बदल जाने पर उसे भूल न जाओ और सदा उसकी सेवा करने और उसे सुख पहुँचाने की चेष्टा करो। काम पड़ने पर हजारों आदिमियों के सामने भी उसका उपकार स्वीकार करने में सङ्कोच न करो। ऐसा करने से परस्पर प्रेम बढ़ेगा, आनन्द और शान्ति की वृद्धि होगी, लोगों में दूसरों की सुख पहुँचाने की प्रवृत्ति और इच्छा अधिकाधिक उत्पन्न होगी, सहानुभूति और सेवा का भाव बढ़ेंगे। याद रखो—उपकार या सेवा करने वाले के चित्त को जो सुख पहुँचाता है, उसका उत्साह बढ़ जाता है और उसके मन में उपकार या सेवा करने की भावना और प्रबल हो उठती है। कृतज्ञ के प्रति परमात्मा की प्रसन्नता और कृतघ्न के प्रति कोप होता है। इससे कृतज्ञ बनो और उपकारी के उपकारों को कभी न भूलो'।

# आसुरी सम्पदा और भगवत्शरणागति

इस घोर कलियुग में मनुष्य प्राय: आसुरी स्वभाव के होते जा रहे हैं। नैतिकता से दूर हर काम कर रहे हैं। अर्थ और काम की लोलुपता अधिक बढ़ गयी है। धर्म और मोक्ष के चिन्तन का अभाव हो गया है।

दम्भ, दर्प, अतिमान क्रोध, पारुष्य और अज्ञान ये आसुरी सम्पदा है। आसुरी सम्पदा वाले केवल ख्याति की भावना से यज्ञ, दान, तप, पूजा पाठ आदि करते हैं। इसलिए उनके यज्ञ, दान आदि धार्मिक कर्म दम्भ पूर्ण माने जाते हैं। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाले तथा विषयानुभव से होने वाले हर्ष को दर्प कहते हैं। विद्या, धन आदि के अनुरूप न हो ऐसे अभिमान को अतिमान कहते हैं। दूसरे को पीड़ा पहुँचाने लायक कठोर वचन को पारुष्य कहते हैं। लौकिक एवं पार-लौकिक तत्त्वों को तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को विवेकपूर्वक न समझना अज्ञान है। आसुरी सम्पदा वाले लोगों में ये दोष पाये जाते हैं। वे भगवान की आज्ञा का उलङ्घन करके काम करते हैं।

परमेश्वर ने लीला के लिए माया का विस्तार किया है, माया का काम है भगवान के स्वरूप को छिपा देना, विपरीत बुद्धि उत्पन्न करना और अपने स्वरूप में भोग बुद्धि, उत्पन्न कर देना, स्त्री, पुत्र, धन आदि के संयोग से विभिन्न प्रकार का भोग विशेष सरस प्रतीत होता है। उन्हीं भोगों में जीव की विशेष आशक्ति बन जाती है। इन्द्रियों की लोलुपता के कारण क्षणिक सुखों से मन हटता नहीं है। अत एव मानव अतिशय आनन्द स्वरूप भगवान को नहीं जानता। सभी जीव भगवान के स्वत: सिद्ध दास हैं। भगवान सबके स्वामी हैं; परन्तु माया के कारण जीव विभिन्न प्रकार के भोगों की दासता को स्वीकार कर लिया है। इसलिए ब्रह्म की दासता को भूल गया है। माया पर विजय पाने के लिए अर्थात् दु:खमय संसार से उद्धार के लिए भगवान ने एक सर्वोत्तम उपाय बतलाया है कि 'जो मनुष्य एक मात्र सत्यसङ्कल्प परमदयालु और विना किसी छोटे-बड़े की भेद दृष्टि के सबको शरण देने वाले मेरी (परमेश्वर की) शरण ग्रहण करते हैं, वे इस गुणमयी माया से तर जाते हैं अर्थात् वे माया का त्याग कर मेरी ही उपासना करते हैं। भगवान ने 'मामेव' में एव शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि अन्य देवी-देवताओं की शरणागति से तथा अन्य उपाय से कल्याण नहीं हो सकता। भगवान की शरण में आने वाला मानव का अहङ्कारादि से रहित होकर 'मैं महान् अपराधी हूँ, मेरा कोई दूसरा उपाय नहीं है। अत एव अकिञ्चन हूँ, हे प्रभो! मेरा आप ही उपाय हैं, इसलिए कृपाकर मेरा उद्धार करें'– ऐसी प्रार्थना करते हुए भगवान की शरण में गिर जाना शरणागति है। इसी को प्रपत्ति भी कहते हैं।

यह शरणागति भगवान श्रीराम, कृष्णादि के समय उनके स्वरूप के समक्ष होती थी; परन्तु वे उस समय रहे नहीं। इसलिए इस समय यह शरणागति उनकी अर्चामूर्ति के समक्ष गुरु के माध्यम से होनी चाहिए। भगवान की अर्चामूर्ति दो प्रकार की होती है–स्वयं व्यक्त और मन्त्र प्रतिष्ठापित। श्रीरङ्गम्, वेङ्कटाद्रि, शालग्राम आदि में भगवान स्वयं व्यक्त स्वरूप हैं। दूसरी अर्चामूर्ति पाषाण आदि की प्रतिमा बनाकर वैदिक रीति से मन्त्रों द्वारा प्रतिष्ठापित होती है। जिसे जैसी अर्चामूर्ति सुलभ हो वह उसी मूर्ति के समझ शरणागति करे।

प्रपत्ति के पाँच अङ्ग हैं—भगवदनुकूल आचरण करना, भगवत्प्रतिकूल आचरण का त्याग करना, भगवान अवश्य ही रक्षा करेंगे, इस तरह का दृढ़-विश्वास करना, भगवान हमारी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ हैं, इस रूप में समझना और दीनभाव से अपनी आत्मा को भगवान के लिए समर्पण कर देना।

# हिरण्यकशिपु-प्रह्लाद संवाद

जब प्रह्लाद अपनी माता कयाधू के गर्भ में थे, उस समय नारद जी ने कयाधू को ब्रह्म, जीव, माया, कर्म, ग्यान, भक्ति आदि तात्त्विक रहस्य का उपदेश किया था। उस उपदेश से ही गर्भस्थ शिशु पूर्ण ज्ञानी बन गया था। जब वह जन्म लिया उस समय परम आनन्द छा गया। उस बालक का नाम प्रह्लाद रखा गया। प्रह्लाद धीरे-धीरे बढ़ने लगे। नारद जी के उपदेश से प्रह्लाद में भगवान के प्रति विशेष प्रेम हो गया था। अत: उन्हें खेल-कूद में मन नहीं लगता था। वे भगवान के ध्यान में तन्मय रहते थे। भगवान श्रीकृष्ण का अनुग्रह रूप ग्रह ने प्रह्लाद के हृदय को खींच लिया था। उन्हें जगत् की अन्य चीजों की सुध-बुध नहीं रहती थी। उस बालक प्रह्लाद को ऐसा लगता था कि भगवान मुझे अपनी गोद में लेकर आलिङ्गन कर रहे हैं। कभी-कभी भगवान मुझे छोड़कर चले गये, इस भावना में उनका हृदय इतना डूब जाता था कि वे जोर-जोर से रोने लगते थे। कभी-कभी मन ही मन उन्हें सामने पाकर आनन्द की अधिकता से ठठाकर हँसने लगते थे। कभी प्रह्लाद जी भगवान के ध्यान में मधुर आनन्द अनुभव करके जोर से गाने लगते थे। वे कभी चिल्लाने लगते थे। कभी-कभी लोक-लाज को त्यागर प्रेम में नाचने लगते थे। कभी-कभी भगवान को याद करके तन्मय हो जाते थे।

दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य थे, उनके दो पुत्र थे सण्ड और अकर्म। ये दोनों हिरण्यकशिपु के विद्यालय के शिक्षक थे। वे दोनों दैत्य बालकों को राजनीति, अर्थनीति आदि पढ़ाया करते थे। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को उन्हीं के पास पढ़ने के लिए भेजा। प्रह्लाद गुरुजी का पढ़ाया हुआ पाठ सुन लेते थे और उसे ज्यों का त्यों सुना दिया भी करते थे; परन्तु प्रह्लाद उसे मन से अच्छा नहीं समझते थे। उनके मन में धारणा थी कि अर्थनीति और राजनीति ये दूसरे को छलने वाली विद्या है।

हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को बड़े प्रेम से गोद में लेकर पूछा—बेटा! बताओं तुम्हें कौन-सी बात अच्छी लगती है?

प्रह्लाद ने कहा—पिताजी! संसार के सारे प्राणी 'मैं' और 'मेरे' के झूठे आग्रह में पड़कर सदा ही अत्यन्त उद्विग्न रहते हैं। ऐसे प्राणियों के लिए मैं यही ठीक समझता हूँ कि वे अपने अध:पतन के मूल कारण घास से ढके हुए अँधेरे कुएँ के समान घर को छोड़कर वन में चले जाँए और भगवान श्रीहरि के शरण ग्रहण करें। यही विद्या है। ***'सा विद्या या विमुक्तये'*** अर्थात् विद्या वही है जो संसार के कष्टों से छुड़ाकर भगवान नारायण के शरण में लगा दे। मुझे यही विद्या विशेष प्रिय लगती है। प्रह्लाद के वचन सुनकर हिरण्यकशिपु ठठाकर हँसा और उसने कहा कि मालूम होता है कि गुरुजी के घर पर विष्णु के पक्षपाति कुछ ब्राह्मण वेश बदलकर रहते हैं, उन्हीं की कही हुई बात को प्रह्लाद दुहरा रहा है। हिरण्यकशिपु ने सण्डामर्क से कहा कि मेरा पुत्र बिगड़ रहा है, आपलोग इसे सम्भालिये। मेरे कुल के शत्रु विष्णु की प्रह्लाद प्रशंसा कर रहा है। आपलोग ऐसा करें कि मेरा पुत्र प्रह्लाद विष्णु का नाम न ले।

सण्डामर्क अपने घर ले जाकर प्रह्लाद को फुँसला-कर बड़े मधुर स्वर से पूछा—बेटा! तुम ठीक-ठीक बतलाओं, तुम झूठ मत बोलना यह तुम्हारी उल्टी बुद्धि कैसे हो गई? हम यह जानना चाहते हैं कि तुम्हारी बुद्धि स्वयं ऐसी हो गई है या किसी ने

तुमको बहका दिया है। प्रह्लाद ने कहा—गुरुदेव! जब भगवान ही कृपा करते हैं तब मनुष्यों की पाशविक बुद्धि नष्ट होती है। पशु-बुद्धि के कारण ही अज्ञानी लोग अपने और पराये का भेद करते रहते हैं। जैसे चुम्बक के पास लोहा स्वयं खींचा चला जाता है, वैसे ही भगवान श्रीमन्नारायण की इच्छा शक्ति से मेरा चित्त संसार से अलग होकर वरवश खींचा गया है।

**यथा भ्राम्यत्यो ब्रह्मन् स्वयमाकर्ष सन्निधौ।**
**तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया।।**

(भागवत० ७-५-१४)

प्रह्लाद के वचन सुनकर सण्डामर्क ने कहा—दैत्यवंश के चन्दन वन में तुम काँटेदार बबूल कहाँ से उत्पन्न हो गया। जो विष्णु दैत्यवंश की जड़ काँटने में कुल्हाड़ी का काम करता है, तुम उन्हीं की बेट बन रहा है। गुरुजी ने अनेक तरह से डाँट-डपटकर प्रह्लाद को धमकाया। एक दिन प्रह्लाद अपने पिता हिरण्यकशिपु के पास पहुँचे। हिरण्यकशिपु ने उनका शिर सुँघकर अपनी गोद में बैठाया और बड़े प्रेम से पूछा—बेटा! प्रह्लाद तुमने गुरुजी के पास रहकर जो शिक्षा प्राप्त की है, उनमें से कोई अच्छी बात हमें सुनाओ? प्रह्लाद ने कहा—पिताजी! भगवान विष्णु के गुण, लीला, नाम आदि का स्मरण उनके चरणों की सेवा, पूजा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन ये भगवान विष्णु के नवधा भक्ति को ही मैं उत्तम अध्ययन समझता हूँ।

प्रह्लाद के वचन सुनते ही हिरण्यकशिपु के ओठ क्रोध से फड़कने लगे। उसने अपने गुरु पुत्र सण्डामर्क से कहा कि अरे! नीच ब्राह्मण तुमने कुछ भी परवाह न करके इस बच्चे को कैसी निःसार शिक्षा दिया है। संसार में ऐसे दुष्टों की कमी नहीं है जो मित्र का रूप धारणकर शत्रु का काम करे। आज तुम्हारा रहस्य खुल गया। सण्डामर्क ने हिरण्यकशिपु से कहा कि यह आपका पुत्र जो कुछ कह रहा है, वह मेरे या अन्य किसी के बहकाने से नहीं। यह तो इसकी जन्मजात स्वाभाविक बुद्धि हैं। आप क्रोध शान्त कीजिए व्यर्थ में हमें दोष नहीं दीजिए।

हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा—यदि तुझे अहित करने वाली दूषित बुद्धि गुरुमुख से नहीं मिली तो बताओ कहाँ से प्राप्त हुई? प्रह्लाद ने कहा—पिताजी! संसार के लोग पिसे हुए को पीस रहे हैं, चबाये हुए को चबा रहे हैं, उनकी इन्द्रियाँ वश में न होने के कारण भोगे हुए विषयों को ही बार-बार भोगने के लिए संसार रूप घोर नरक की ओर जा रहे हैं। जैसे गृहासक्त पुरुषों का मन अपने आप किसी के सिखाने से अथवा अन्य लोगों के सङ्ग से भगवान श्रीकृष्ण में नहीं लगती। जो इन्द्रियों से दिखने वाले बाह्य विषयों को परम इष्ट समझकर मूर्खता वश अन्धों के पीछे अन्धों की तरह गिरने के लिए चले जा रहे हैं। वैसे ही मेरे लिए स्वार्थ या परमार्थ भगवान विष्णु ही हैं। उन्हीं की प्राप्ति से हमें सब पुरुषार्थों की प्राप्ति हो सकती है। जिनकी बुद्धि भगवान के चरण कमलों का स्पर्श कर लेती है, उनके जन्म-मृत्यु रूप अनर्थ का सर्वथा नाश हो जाता है। प्रह्लाद इतना कहकर चुप हो गए।

●

**धन प्राप्ति मन्त्र**

**अश्वदायि च गोदायि धनदायि महाधने। धनं मे लभतां देवी सर्वकामांश्च देहि मे।।**

# भगवान की स्तुति

**प्रभो हमसे अधम को जो, उवारो तो सुयश होगा।**
**गिरा हूँ आ चरण में जो, न तारो तो अयश होगा।।१।।**
**महालक्ष्मी वचावेंगी, चाहौं जो कर्म भोगाने।**
**एही लेकर हरे अपने, परस्पर में बहसे होगा।।२।।**
**धरोगे पक्ष वेदों का, धरेगी पक्ष ही गुण को।**
**अपाने पक्ष टुटन पै, घरेलु वैमनस होगा।।३।।**
**अये प्रभु दीनबन्धु हो वताते सत्य साक्षी जो।**
**हमारे कष्ट से भी तो, बचाना भी अवस होगा।।४।।**
**सुकोमल हृदय के कारण, दया जब देख आवेगी।**
**इसी से घोर सङ्कट से बचाने को विवस होगा।।५।।**
**सुगम से सुगम हैं मारग यही मन में विचारो जो।**
**मिटेगा द्वन्द ही सब जब अभय कर शिर परस होगा।।६।।**

**अर्थ**—भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! हमारे जैसे अधम को उद्धार करने से आपका सुशय होगा। मैं आपके चरणों में आकर गिरा हूँ, यदि मुझे आप संसार से नहीं तारेंगे तो आपको संसार में अयश होगा। यदि आप मुझे कर्म का फल भोगाना चाहेंगे तो मुझे महालक्ष्मी बचा लेगी। इस विषय को लेकर आप और लक्ष्मीजी में परस्पर बहस होगी। यदि आप कठोपनिषद् १-२-२३ के अनुसार जो दुष्ट आचरण करने वाला पुरुष, जो न शान्त है, न समादृत और न शान्त मन वाला है वह ज्ञान के द्वारा परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। अर्थात् विपरीत आचरण वाला भगवान को नहीं प्राप्त कर सकता। इस वेद का पक्ष आप लेंगे तो माता महालक्ष्मी जी आपके गुणों का पक्ष लेंगी।

आपका नाम अविज्ञाता है अर्थात् आप शरणागतों के दोष को नहीं जानते हैं भूल जाते हैं। आप भक्तवत्सल, दीनबन्धु और पतितपावन हैं। ऐसी परिस्थिति में (आप और लक्ष्मीजी के बहस होने पर आपका पक्ष कमजोर पड़ जायेगा) उससे आप और लक्ष्मीजी में वैमनस्यता के कारण घरेलु झगड़ा होगा। हे प्रभो! आप दीनबन्धु हैं, आप सदा सत्य का पालन करते हैं। अत: हमें कष्ट से आपको अवश्य बचाना होगा। आपका हृदय अत्यन्त कोमल है, इसलिए दु:खियों को देखकर दया उमड़ जाती है। अत एव आप घोर सङ्कट से बचाने के लिये विवश हो जाते हैं। जीवों को उद्धार के लिये सुगम से सुगम यही मार्ग है। आप जब मेरे सिर पर हाथ रख देंगे तो, मेरा सब संघर्ष मिट जायेगा।

# कालसर्प दोष के ताण्डव की सत्यता

सकल ज्ञानराशि स्वरूप वेद के छः अङ्ग हैं– शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष। इसमें व्याकरण को मुख तथा ज्योतिष को नेत्र माना गया है। नेत्र प्रत्यक्षीकरण कराता है, अत एव ज्योतिष को प्रत्यक्ष शास्त्र माना गया। सूत्ररूप में वर्णित वेद के मन्त्रों को ऋषियों ने अपने तपो-जन्यज्ञान से साक्षात्कार किया अर्थात् उन मन्त्रों के रहस्यों का परिज्ञान कर जनहित में प्रकाशित किया, इसी से मन्त्रों के साथ उन-उन ऋषियों के नाम सम्बद्ध हो गए। अत एव परम्परागत ज्ञानानुसार सकल भारतीय वाङ्मय में ऋषिवचन ही मान्य होते हैं, जिसे हम आर्षवचन अथवा आर्षग्रन्थ से सम्बोधित करते हैं।

मनुष्य के भविष्य को प्रत्यक्ष कराने वाला ज्योतिष शास्त्र भी इसका अपवाद नहीं है। जन्म से मृत्युपर्यन्त तक घटने वाली घटनाओं को दर्शाने वाला अनेक ज्योतिषीय आर्षग्रन्थ हैं जिसके अनुसार जम्नकालिक समय को आधार बनाकर जन्मकुण्डली का निर्माण किया जाता है। ईश्वरीय विधान के अनुसार दिन, तिथि, मास, पक्ष, नक्षत्र, योग, करण एवं ग्रहों का प्रभाव मानवीय जीवन को पूर्णरूप से प्रभावित करता है। इन सभी के समवेत स्वरूप को कुण्डली कहते हैं।

कुण्डली में १२ राशियों के लिए १२ भाव होते हैं, जिसमें नवों ग्रहों की विद्यमानता के अनुसार मानव पर पड़ने वाले फल को योग कहा गया है। त्रिकालद्रष्टा ऋषियों ने अपने अलौकिक ज्ञान के द्वारा जगत् में घटने वाली सभी घटनाओं को, जिससे प्राणी को प्रभावित होने की सम्भावना रहती है, उसको अपने ग्रन्थों में दर्शा दिया है; किन्तु किसी भी आर्षग्रन्थ अर्थात् ज्योतिष के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रकार के कालसर्प योग की चर्चा नहीं है। इस पर सभी प्राचीन पण्डितों की राय एकमत है।

आर्ष ऋषियों ने ग्रहों के दो स्वरूप निर्धारित किए हैं–शुभग्रह, पापग्रह। चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्र शुभग्रह तथा राहु-केतु (छायाग्रह) मङ्गल, शनि एवं आंशिक सूर्य को क्रूरग्रह कहा गया है। यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि कोई भी ग्रह स्वतन्त्ररूप से सर्वतोभावेन मानव को प्रभावित नहीं करता है। संसार के समस्त चराचर वस्तुओं का प्रभाव मानव के ऊपर किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही पड़ता है। यही कारण है कि मानव द्वारा सभी वस्तुएँ यथावसर पूजित होती हैं। त्रिकालद्रष्टा ऋषियों ने इन सभी पक्षों पर गहन चिन्तन-मनन कर छोटे से छोटे तथा बड़े-से बड़े अनिष्टकारक तत्त्वों पर चिन्तन कर उन्हें अपने आर्ष (ज्योतिष के प्राचीन) ग्रन्थों में परिगणित कर दर्शा दिया है; परन्तु विगत कुछ वर्षों से आधुनिक (नूतन) दैवज्ञों ने आर्ष वचनों के प्रसङ्ग विपरीत भाव प्रदर्शित कर 'कालसर्प' योगरूपी भयानकता से समाज को भयाक्रान्त कर दिया है। वस्तुतः कालसर्प योग है क्या? इसके कितने दुस्परिणाम हैं? इसका निवारण क्या है? आदि पर विचार करें।

**कालसर्प योग क्या है?**

१. छाया ग्रह राहु एवं केतु के मध्य सभी ग्रहों की उपस्थिति को 'कालसर्प' योग नाम दिया गया है।

२. इसका मुख्य दो स्वरूप है—उदित एवं अनुदित कालसर्प योग। पुनः नवग्रहों तथा बारह-

राशियों के विद्यमानता के अनुसार ३४५६ (तीन हजार चार सौ छप्पन) प्रकार के तथाकथित कालसर्प योग की स्थिति बनती है।

**कालसर्प योग के दुस्परिणाम—**

१. अशान्त चित्त रहना,

२. धन व्यय

३. उन्नति में बाधा

४. अकाल मृत्यु

५. राजभय (जेलयात्रा)

६. सन्तान प्राप्ति में बाधा

७. प्रतिष्ठा नाश

८. विद्यानाश

९. रोजगार नाश अदि।

अर्थात् संसार के समस्त दु:ख को देने वाला तथाकथित कालसर्प दोष को कहा जा रहा है।

**कालसर्प योग की सच्चाई—**

१. यह आर्ष ऋषियों से अनुमोदित नहीं होने के कारण आदरणीय नहीं है।

२. क्या छायाग्रह (राहु-केतु) ही सबों से बलवान् है?

३. क्या सभी शुभग्रह चाहे वे अपने घर में हों अथवा मित्र के घर में, ऊँच स्थान में हों या अन्य शुभदायक योग के युक्त ही क्यों न हों राहु-केतु से प्रभावहीन हो जाते हैं?

४. क्या राहु-केतु सभी से ऊपर ब्रह्म की सत्ता प्राप्त कर लेता है?

५. इस योग से जितनी भी अनिष्ट की आशङ्का व्यक्त की गई है, उससे आगे संसार में कुछ और अमङ्गल शेष है क्या?

६. लोक-कल्याण के लिए जीवन जीने वाले अन्त:करुणाप्रवण ऋषियों की क्या बुद्धि मारी गयी थी? जो छोटे-छोटे अनिष्टों को तो गिना दिया; परन्तु सबसे बड़े अनिष्ठ कारक कालसर्प योग को नहीं दर्शाया?

उपर्युक्त के अतिरिक्त तथाकथित धन-लोलुप ज्योतिषियों ने कालसर्प योग को अत्यन्त भयानक बताकर निराकरण का जो मार्ग बतला रहे हैं, वह अपने आप में एक महाकाल सर्पयोग की स्थिति उत्पन्न करता है। कालसर्प योग से मुक्ति हेतु अर्थात् उसकी शान्ति हेतु यह कहा जा रहा है कि चूँकि सर्प को शिवजी अपने मस्तक पर भूषण स्वरूप धारण करते हैं, अत: वही इस भयानक योग से मुक्ति दिला सकते हैं। अत एव आपको स्वर्ण के नागदान करते हुए, नासिक, उज्जैन आदि विशेष शिव मन्दिरों में महामृत्युञ्जय का जप, रुद्राभिषेक-पूर्वक शिवाराधन करना अनिवार्य है।

यद्यपि ऊपर यह कहा जा चुका है कि कालसर्प योग ऋषि वचनों से अनुमोदित नहीं होने के कारण आदरणीय नहीं है, फिर भी यदि इसे स्वीकार भी लिया जाय तो भी यह भयावह कथमपि नहीं है। जिस प्रकार अन्यान्य क्रूरग्रहों की स्थिति विशेष से प्राणी सन्तप्त होता है, उसी प्रकार इस योग से भी सन्तप्त होगा। यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि देश के अनेक हस्तियाँ ऐसी हुई हैं, जिनकी कुण्डली में तथाकथित कालसर्प योग रहा है; परन्तु उन्हें किसी भी प्रकार से विशेष सन्ताप नहीं हुआ, बल्कि राजयोगस्वरूप देश की सत्ता पर सुदीर्घ काल तक वे विराजमान रहे। काशी से प्रकाशित विश्वपञ्चाङ्ग के सुदीर्घ काल तक सम्पादन करने वाले तथा वर्तमान समय में हृषीकेश पञ्चाङ्ग के सम्पादक प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित शिरोमणि हीरालाल मिश्र जी ने बतलाया कि मैंने पं० जवाहर लाल नेहरू, पं० कमलापति तिपाठी, पं० लोकपति त्रिपाठी, श्रीवरुण गाँधी आदि अनेक हस्तियों के कुण्डली निर्माण किया है तथा देखा है, ये सभी हस्तियाँ

तथाकथित कालसर्प दोष से ग्रसित थे और राजसत्ता का सन्तापरहित होकर आजन्म उपभोग किए हैं। सामान्यरूप से परेशानी तो अनेक कारणों से होती ही रहती है। वर्तमान भागदौड़ के जीवन में हर आदमी २४ घंटे अन्दर ही अनेक प्रकार के उतार-चढाव को देखता है। तो क्या इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि यह कालसर्प दोष का ही प्रभाव है?

**कालसर्प योग की शान्ति का सर्वोत्तम उपाय—**

सभी प्रकार के कर्मों में सभी विद्वानों द्वारा एक मन्त्र बोला जाता है—

**तदेवलग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।**
**विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽघ्रियुगं स्मरामि ।।**

अर्थात् जहाँ पर भगवान् श्रीहरि का स्मरण होता है, वहाँ पर, लग्न, ग्रह, देवता, विद्या आदि सभी बलवान स्वरूप को प्रदान करते हैं अर्थात् अमङ्गलकारक होते हुए भी हरिस्मरण से मङ्गल कारक हो जाते हैं। फिर उन पण्डितों को यह कैसे विस्मृत हो जाता है कि हरिस्मरण अर्थात् हरि आराधना से कालसर्प दोष दूर नहीं होगा? इसके अतिरिक्त उनके द्वारा जो यह तर्क दिया जाता है कि सर्प को अपने मस्तक पर शिवजी भूषणस्वरूप धारण करते हैं, अत: वे ही एकमात्र शान्ति प्रदान कर सकते हैं, कितना औचित्य युक्त है? भगवान् विष्णु के शय्या बनकर नित्य चरणों की सेवा में सहस्त्रफण धारी शेषनाग संलग्न रहते हैं, तो भला आप ही विचार करें कि क्या मस्तक पर धारण करने वाले शिवजी से अपने पैरों के नीचे रखने वाले भगवान् विष्णु से सर्पराज कम प्रभावित होंगे या ज्यादा?

भगवान नारायण के नित्य सेवक के रूप में शेष जी भी हैं। यही कारण है कि जब-जब भगवान का अवतार इस धराधाम पर होता है, तब-तब श्रीशेष जी उनकी सेवा में सदैव साथ रहते हैं। त्रेतायुग अर्थात् रामावतार में शेषजी स्वयं लक्ष्मण के रूप में भगवान की सेवा में उपस्थित रहे हैं और प्रभु के भक्तों को सभी प्रकार के कष्टों से मुक्त किए हैं। देवताओं के वरदान के कारण सामान्यतया अवध्य स्वरूप धारण किए हुए जगत् संतापी मेघनाद को मारने के लिए चौदह वर्षों तक कठोर तप लक्ष्मण जी ने प्रभु के भक्तों के सन्ताप को दूर करने के लिए ही किया था।

द्वापर युग में जब भगवान लीला बिहारी (श्रीकृष्ण) के स्वरूप में अवतरित हुए तब रामावतार के सेवा से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उन्हें अपना अग्रज बनने का सौभाग्य प्रदान किया था। वही शेषजी के वंशज श्रीप्रभु के भक्तों को कष्ट दे सकते हैं अथवा कष्ट पहुँचाने की उनमें शक्ति है? क्योंकि जो जिसका दास है, वह अपने स्वामी के भक्तों को कैसे सन्तप्त कर सकता है? प्रारब्धवशात् कालिय नाग अपने यमुनावास के क्रम में स्वभावजन्य दोष के कारण जब प्राणियों को सन्ताप देने लगा, तब बालस्वरूप श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में ही उसका गर्व भञ्जन करते हुए नाथ दिया था, जिससे उसे प्रारब्ध जन्य दोष से मुक्ति हुयी थी। आज भी नाग के शीश पर भगवान् के चरण के चिह्न स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। सत्य तो यह है कि विभिन्न प्रकार के सर्पों में भयानक नाग (अत्यधिक विषैला) के रूप में भगवान् के चरण के चिह्न से ही पहचाना जाता है। क्या धन लोलुप वे पण्डित इस बात को विस्मृत कर गये हैं, जब भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विराट स्वरूप दिखलाया था, तब भोले बाबा उसमें कहाँ थे और उनकी स्थिति कैसी थी? जब श्रुति कहती है कि परब्रह्म वे ही अर्थात् श्रीनारायण ही हैं और उन्हीं से सभी देवतादि प्रकाश प्राप्त कर प्रकाशित होते हैं, तब फिर ऐसा भ्रमजाल फैलाना मानवता के साथ क्रूर खिलवाड़ नहीं तो और क्या है? एक तरफ आप जनता को कालसर्प की भयानकता

से मुक्त कराना चाहते हैं और दूसरी तरफ हरि स्मरण के अनेकविध सरल मार्ग के होते हुए भी धनापहरण की कामना से खर्च, भयरूपी महाकाल सर्प दोष उस पर थोप रहे हैं।

श्रुति पुराण सभी श्रीहरि की महिमा बखान करते हुए कहते हैं—

**शुभग्रहाः भूतपिशाचयुक्ता ब्रह्मादयोदेवगणाः प्रसन्नाः। लक्ष्मीस्थिरातिष्ठति मन्दिरे च गोविन्दभक्तिं वहतां नाराणाम्।।**

यहाँ एक बात और स्पष्ट करना उचित प्रतीत हो रहा है कि जब सभी प्रकार के कष्टों अर्थात् संसार चक्र के आवागमन से भी मुक्ति प्रदान करने वाले प्रभु श्रीनारायण को ही एकमात्र उपाय सभी सद्ग्रन्थों ने बतलाया है, तब उनकी आराधना से क्षुद्रयोग से मुक्ति प्राप्त करने में क्या बाधा होगी? अर्थात् कुछ नहीं। यहाँ एक प्रसङ्ग उद्धृत करना समीचीन होगा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पं० मदन मोहन मालवीय जी के पुत्र अत्यधिक विमार थे। जीवन की आशा उन्हें नहीं रही थी। तब वे विह्वल होकर तार द्वारा अपने पिता मालवीय जी को अपनी स्थिति से अवगत कराया। मालवीय जी ने लौटती डाक से तार द्वारा संदेश दिया कि गजेन्द्रमोक्ष रूपी महास्त्र तुम्हें मैंने पूर्व में ही दे दिया हूँ, तब तुम क्यों विचलित अथवा भयभीत होते हो।

(श्रीमद्भ०महापु० की भूमिका से उद्धृत)

अतः उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि कालसर्प योग की भयानकता से विह्वल होने की आवश्यकता नहीं है। तथाकथित यह योग जितना अनिष्टकारक है, उतना ही राजयोगादि को देने वाला है, फिर भी आत्मतुष्टी के लिए सर्वोत्तम शान्ति रूप उपाप भगवान् श्रीहरि का स्मरणपूर्वक उनका विविध प्रकार से पूजन ही है। यथा—

१. विष्णुसहस्रनाम का सम्पुट पाठ करना या कराना।
२. कुशल वैष्णव पण्डित से नृसिंह मन्त्र का जाप कराना तथा नृसिंह यन्त्र का धारण करना।
३. 'शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं' आदि मन्त्र का जाप करना अथवा कराना।
४. यदि जातक वैष्णवी दीक्षा से युक्त हो तो मूलमन्त्र का जाप उसके लिए सर्वोत्तम उपाय है।

अतः आप सभी से अनुरोध है कि भयरहित होकर भगवान् श्रीहरि के चरणों में निष्ठापूर्वक आराधना करें और धनलोलुप पण्डितों के धनापहरण रूपी महाकाल सर्पयोग से स्वयं को मुक्त रखते हुए निर्भय रहें।

*।। श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु ।।*

## किस दिशा में विवाह सम्भव है

१. शुक्र से सप्तमेश की जो दिशा हो उसी दिशा में प्रायः कन्या का घर होता है।

२. यदि सप्तम स्थान में ग्रह हों तो उस स्थान की राशि की जो दिशा हो अथवा सप्तम स्थान पर जिन ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो उन ग्रहों की राशिस्थ दिशाओं में कन्या का घर होता है। यदि स्थिर राशि हो तो कन्या का घर वर के घर से विशेष दूर न होगा और यदि चर राशि हो तो वर के घर से कन्या का घर दूर होगा।

॥ श्रीमतॆ रामानुजाय नमः ॥

# सरौती-महायज्ञ का आँखों देखा हाल

लीला विहारी प्रभु की लीला प्रभु ही जानते हैं। संवत् २०६७ तदनुसार २०१०-११ का वर्ष अपने अवसान की ओर उन्मुख था, जिसे देखकर वैष्णववृन्द कुछ उदास हो रहे थे। जिसका कारण था स्वामी जी महाराज द्वारा महायज्ञ रूपी वार्षिक अनुष्ठान के प्रति मौन रहना। यद्यपि स्वामी जी महाराज द्वारा वर्ष पर्यन्त, अहर्निश धर्मप्रचार रूप श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, गीता आदि आर्षग्रन्थों के अनुसार कलि के ताप से सन्तप्त जीवों को परित्राण दिलाने हेतु श्रीवैष्णवधर्म की दीक्षा, शरणागति आदि परमतत्त्वों का प्रवचन के माध्यम से उपदेश होता ही रहता है। तथापि वर्ष में एक बार बृहद् आयोजन की अपेक्षा सभी श्रीवैष्णव भक्तों के मन में नित्य कर्म की भाँति बनी रहती है। स्वामी जी के मौन रहने पर मगध क्षेत्रीय भक्तों के मन में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उठती और समाप्त हो जाती। किसी के मन में अनावृष्टि तो किसी के मन में कुछ और कल्पनाएँ हेतुरूप में दृष्टिगोचर होते थे; परन्तु रहस्य रहस्य बना रहा।

इस प्रकार दिसम्बर २०१० का आगमन होकर दो सप्ताह व्यतीत हो गया, तृतीय सप्ताह में कुछ भक्तों को २६.१२.१० को सरौती में उपस्थित होने का समाचार प्राप्त हुआ। बस भक्तों के मन में उल्लास जाग गया। इस प्रकार वैष्णवों के मनोहारी सङ्कल्प दिवस अर्थात् २६.१२.१० का दिन आ गया। सरौती में पटना, गया, जहानाबाद, धनवाद, बोकारो, आरा, काशी आदि के अतिरिक्त देहाती क्षेत्रों से प्रमुख वैष्णव भक्तों का समुदाय उपस्थित हो गया। प्रसाद ग्रहण के उपरान्त बैठकरूप सभा में हरि स्मरण के पश्चात् स्वामी जी महाराज का उद्बोधन प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी ने अपने प्रवचन में श्रीपरमाचार्य (परमपदी अनन्तश्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य) जी महाराज के द्वारा स्थापित आदर्शों, मूल्यों पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हुए कहा कि परमाचार्य जी महाराज भगवान के दिव्य अंशों से युक्त होकर इस धरा-धाम पर अवतीर्ण हुए थे। भगवान का शास्वत स्वभाव है कि वे अकिञ्चनों पर ही विशेष रूप से द्रवित होते हैं। अत एव स्वामी जी ने भी उसी मार्ग का अवलम्ब कर अवैदिक संस्कृति से प्रभावित अर्थात् ब्राह्मण होते हुए अब्राह्मण स्वरूप से युक्त समाज को पुनः सनातन वैदिक श्रीवैष्णव धर्म में दीक्षित कर ब्राह्मणत्व से विभूषित करने का गुरुतर दायित्व अपने ऊपर उठा लिया। एतदर्थ अनेक प्रकार के कार्यक्रम श्रीस्वामी जी ने एक साथ सञ्चालित करना प्रारम्भ कर दिया। यथा— श्रीवैष्णवी दीक्षा देना, कथा-प्रवचन, संस्कृत विद्या के प्रचारार्थ संस्कृत विद्यालयों का निर्माण, समाज के अकिञ्चन बालकों को शिक्षित कर स्वावलम्बी बनाना आदि। इन सभी कार्यों का सम्पादन स्वामी जी ने सरौती को केन्द्र बनाकर किया, जिसका प्रतिफल यह हुआ कि लाखों लोग सनातन वैदिक श्रीवैष्णव धर्म में दीक्षित होकर तथा हजारों की संख्या में सरौती तथा स्वामी जी के अन्य संस्थाओं से शिक्षा ग्रहण करने वाले स्नातक अपने विद्या-वैदुष्य द्वारा विविध क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए अपने परिवार के साथ समाज को गौरवान्वित कर रहे हैं। पूज्यपाद स्वामी जी महाराज ने परमाचार्य जी महाराज द्वारा रोपित वृक्ष के रूप में स्वयं को बतला कर उपस्थित भक्तों के अन्दर रोमाञ्च उत्पन्न कर दिया। स्वामी जी के मुखारविन्द से निःसृत मर्मस्पर्शी अमृतमय वाणी ने सभी को कुछ क्षण के लिए विदेह का मूर्तिमान् स्वरूप प्रदान कर दिया।

अन्त में स्वामी जी ने कहा कि ऐसे महान सन्त के प्रति हम सबों को कृतज्ञ होना चाहिए। अत एव भगवान की प्रेरणा से इस वर्ष का वार्षिक अनुष्ठान अर्थात् प्रत्येक वर्ष होने वाला महायज्ञ सरौती में होगा, जिसमें स्वामी जी की पूर्वकाल में स्थापित की गयी चीन्नी मिट्टी की प्रतिमा का कलेवर परिवर्तन (जो जयपुर के कुशल शिल्पियों द्वारा मकराना के सङ्गमरमर से निर्मित) होगा तथा वेङ्कटेश भगवान के द्वारपाल जय-विजय की मूर्ति के साथ भगवान के वाहन गरुड़ जी को सरौती में प्रतिष्ठापित करने की प्रेरणा भगवान से प्राप्त हो रही है। अत: उपर्युक्त कार्य को सम्पन्न करने के लिए सरौती आश्रम में कुछ आवश्यक कार्य सम्पादित करने होंगे। यथा–महाविद्यालय का स्थानान्तरण, चाहरदीवारी का विकास, यज्ञमण्डप को सुसज्जित करना आदि।

बस! भक्तों का उत्साह अतीव दर्शनीय हो गया। तरह-तरह के प्रस्ताव के साथ दायित्व-वहन करने की घोषणा होने लगी, स्वामी जी द्वारा मुहूर्त्त की घोषणा कर दी गयी। २० फरवरी २०११ से यज्ञ परिसमाप्ति तक अखण्ड हरिनाम सङ्कीर्तन, २२.२.११ से २.३.११ तक वाल्मीकि रामायण नवाहयज्ञ, २४.२.११ से ४.३.११ तक हरिवंशपुराण नवाह यज्ञ, ५.३.११ से ११.३.११ तक भागवत-महापुराण सप्ताह-यज्ञ, ८.३.११ को जलाहरण एवं नगर-शोभायात्रा, ९.३.११ से १३.३.११ तक प्राण-प्रतिष्ठा के निमित्त मुख्य महायज्ञ एवं सन्तों, विद्वानों का प्रवचन, १३.३.११ को तदियाराधन एवं विदाई। इसी के साथ सङ्कल्प को मूर्त्तरूप देने हेतु दूसरी बैठक १५ दिन बाद करने का निश्चय हुआ।

**सरौती स्थान का सौन्दर्यीकरण**—समय कम काम ज्यादा। यह कहावत सन्त के शक्ति से अपरिचित भक्त को कभी-कभी हतप्रभ कर रहा

**यज्ञ-शाला**

था। मात्र दो-ढाई माह का समय और ५० (पचास) लाख से ऊपर की कार्य-योजना, वह भी कार्य अनेक प्रकार के। अकिञ्चन भक्त को हतप्रभ न करे यह सर्वथा अस्वाभाविक है; परन्तु जिन भक्तों ने स्वामी जी महाराज से वाल्मीकि रामायण का प्रवचन सुना था, वे भक्त भरद्वाजमुनि द्वारा भरत जी के स्वागत का प्रसङ्ग स्मरित कर अति उत्साहित थे; क्योंकि उस प्रसङ्ग से सन्तों की शक्ति का ज्ञान उन्हें प्राप्त हो चुका था। श्रीरामचन्द्र जी को वन से अयोध्या लाने हेतु वनगमन के क्रम में भरत जी भरद्वाज मुनि के आश्रम पर ससैन्य पहुँचते हैं।

**नव-निर्मित महाविद्यालय भवन**

मुनि ने भरत जी का राजोचित अर्थात् राजा, सेवक, सैनिक, हाथी-घोड़े सभी के मनोनुकूल, यथायोग्य भोजन, शयन आदि की व्यवस्था तत्काल

**स्थान का मुख्य द्वार**

उपलब्ध करा दिया। यह देखकर कुछ लोगों को परम आश्चर्य हो रहा था; क्योंकि मुनि अपने कुटिया में कन्द-मूल, मृगछाल, वल्कल आदि के अतिरिक्त कुछ सञ्चित तो रखते नहीं थे, फिर तत्काल विशाल सेना के साथ राजा भरत का यथोचित स्वागत कैसे किए और यह सभी कहाँ से उपलब्ध हुआ?

**गोशाला**

इसका उत्तर है—तपोबल, त्यागबल आदि। सरौती की स्थिति भी कुछ मिलता-जुलता प्रतीत होने लगा। अल्प समय में सञ्चित राशि के सर्वथा अभाव रहते हुए भगवान के मन्दिर में टाइल्स लगाना, स्थान के बाहरी प्राङ्गण के चाहरदीवारी को ऊँचा करना, गोशाला का निर्माण करना, मन्दिर के उत्तर भाग में स्थित भवन पर रेलिङ्ग (घेरा) देना, यज्ञ-मण्डप को टाइल्स से सुसज्जित करना, परमाचार्य जी के मन्दिर का निर्माण, जय-विजय एवं गरुड़ जी का आसन (गरुड़स्तम्भ), स्वामी जी महाराज के प्रकोष्ठ का जीर्णोद्धार, भगवान के चौका की नयी व्यवस्था, गेट का सुदृढ़ीकरण, स्थान के ऊपरी भाग अर्थात् छत पर हनुमान, गरुड़ जी की

**मन्दिर के आगे का अतिथि-शाला**

मूर्तिनिर्माण के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के साज-सज्जा तथा महाविद्यालय को स्थान से बाहर अर्थात् स्थान के घेरा से सटे पूर्व धान उगलने वाली (काफी नीचे की) जमीन में चार-पाँच फुट जमीन पाटकर महाविद्यालय भवन का निर्माण कर स्थानान्तरित करना, विशाल प्राङ्गण के भूमि को पक्का करना आदि का कार्य कैसे होगा और कहाँ से होगा; परन्तु उपर्युक्त सभी कार्य एक साथ प्रारम्भ होकर द्रुतगति से पूर्णता की ओर अग्रसर होता हुआ महायज्ञ के पूर्व पूर्ण हुआ। भला क्यों न होता? भगवान अपने कार्य को पूर्ण करने के लिए विश्वकर्मा

रूपी अपने भक्तों को संयोजित जो कर दिया था। वैष्णव भक्तों के उत्साहपूर्ण सहयोग से परमाचार्य जी महाराज के मूर्त्ति का दिव्य प्रतिष्ठा महोत्सव से पूर्व का सङ्कल्पित कार्य मूर्त्तरूप को प्राप्त हुआ और महायज्ञ का शुभ सङ्कल्पित मुहूर्त्त आ गया।

**जलाहरण**—एक हजार कलशों को अपने मतस्त पर धारण किए मातृशक्ति का समूह तथा

**पीठाधीश्वर के आगवानी करते पण्डितगण**

श्रीवैष्णववृन्द, बैंड बाजों की ध्वनि, पण्डितों द्वारा वैदिक, पौराणिक तथा साम्प्रदायिक स्तोत्रों का पाठ, अन्य वैष्णवभक्तों द्वारा अखण्ड हरिनाम सङ्कीर्तन, गाड़ी, घोड़े, मोटरसायकिल आदि वाहनों के मध्य गजराज पर सुशोभित छोटे स्वामी (श्रीहरेरामाचार्य) जी महाराज से शोभायमान जलाहरण की शोभा आचार्य परम्परा का अवर्णनीय दृश्य उपस्थित कर रहा था। जिसने देखा अपने को सफल मनोरथ समझा। सरौती से वैदराबाद के समीप महानद सोन से जलाहरण हुआ। शोभायात्रा में आशातीत जनशैलाब उमड़ पड़ा, तीन-चार किलोमीटर की दूरी तय करने में ढाई से तीन घण्टे का समय लग गया। यह था शोभायात्रा का अलौकिक दृश्य।

९.३.११ से मुख्य-यज्ञ प्रारम्भ हुआ, पूर्ण वैदिक-रीति से परमाचार्य जी, जय-विजय एवं गरुड़ जी की मूर्त्ति में प्राण-स्थापना का कार्य प्रारम्भ हुआ जो १३.३.११ तक अर्थात् मूर्ति स्थापना तक चला।

स्वामी जी महाराज ने अपने सभी अनुष्ठानों में ज्ञानयज्ञ को अर्थात् प्रवचन को विशेष महत्त्व

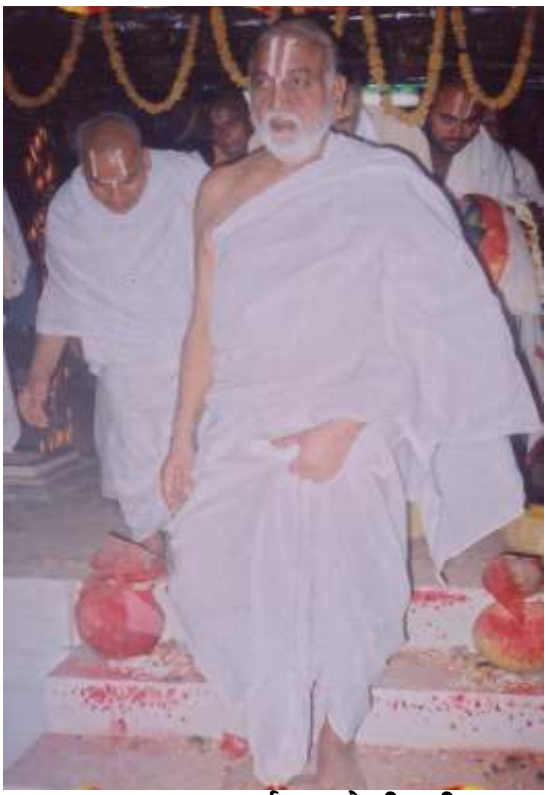

**यज्ञभगवान का दर्शन करते पीठाधीश्वर**

दिया है। सरौती तो उनका गुरुद्वारा ही है। वस्तुत: स्वामी जी में यह प्रवृत्ति अथवा गुण परमाचार्य जी महाराज द्वारा निवेशित है, अत: यहाँ उसकी उपेक्षा की कल्पना कहाँ? एतदर्थ आमन्त्रित दर्जनों सन्त-महान्त-विद्वान् इस महायज्ञ में उपस्थित हुए। सबसे बड़ी उपलब्धि गोवर्धनपीठाधीश्वर की उपस्थिति कही

जा सकती है। छोटे सरकार, सैकड़ों पिताम्बरधारी जलकलश से युक्त पण्डितों तथा हजारों भक्तों के साथ पीठाधीश्वर की आगवानी वैदरावाद से किए। जिसमें वैदरावाद से सरौती तक वैष्णव तथा पण्डितों का ताँता लग गया था। श्रीवैष्णव धर्म प्रचार उत्तर भारत में गोवर्द्धन पीठ से ही हुआ है। वहीं के प्रकाश से प्रकाशित होकर परमहंस स्वामी मगध क्षेत्र को प्रकाशित किए। तदुपरान्त परमाचार्य जी महाराज, पुनः वर्तमान स्वामी जी महाराज ने सनातन वैदिक श्रीवैष्णव धर्म की ध्वजा को नयी कीर्तिमान से युक्त किया और कर रहे हैं।

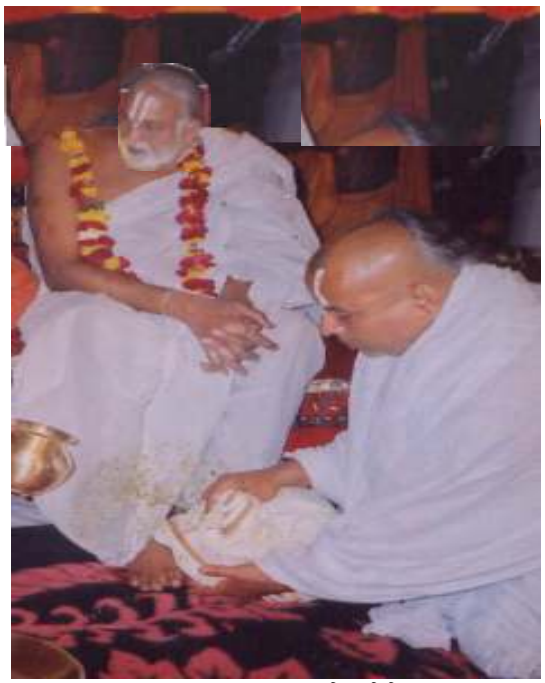

**पीठाधीश्वर का पूजन करते छोटे सरकार**

गोवर्धनपीठाधीश्वर श्री बालक स्वामी का किसी कार्यक्रम में सम्मिलित होना अपने आप में आश्चर्य है; परन्तु सरौती अथवा स्वामी जी का प्रेम, अनेक प्रकार के व्यस्तता होते हुए भी उन्हें आने के लिए विवश कर दिया। अन्यथा मगध क्षेत्र की जनता अपने पीठाधीश्वर के दर्शन से वञ्चित रह जाती। द्वादश आलवारों के प्रतिनिधिरूप में पूजित होने पर उनकी अलौकिक शोभा होने लगी और वे भी अपने सामने चन्दनचर्चित ललाट से युक्त विशाल जनसमुदाय को देखकर गद्‌गद हो गए। भक्तों के आग्रह पर वे अपने सारगर्भित आशीर्वचन में विशिष्टाद्वैत, सरौती तथा श्रीवैष्णव धर्म पर प्रकाश डाला।

सन्त-समाज में अग्रगण्य तरेत पाली मठाधीश्वर अनन्तश्री विभूषित श्रीस्वामी धरणीधराचार्य जी महाराज तथा अकरबरपुर, अयोध्या, काशी अनेक स्थानों के स्थानाधीश अनन्तश्री विभूषित स्वामी धरणीधराचार्य (वेदान्ती) स्वामी जी महाराज की उपस्थिति सभी भक्तों के लिए अत्यन्त आह्लादकारी रही; क्योंकि आप दोनों की अवस्था अत्यधिक है, फिर भी उपस्थित हुए। इनके अतिरिक्त श्रीस्वामी राघवाचार्य जी महाराज पेरहाप, स्वामी चक्रपाणि जी महाराज अयोध्या, स्वामी सुदर्शनाचार्य (सुमिरण जी) जी महाराज, स्वामी रामलखन दास जी महाराज अयोध्या, श्रीस्वामी श्रीनिवासाचार्य जी महाराज वृन्दावन, स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी तिरुपति, स्वामी कृष्णाचार्य जी, वैकुण्ठभवन अयोध्या, श्रीसुर्शनाचार्य जी ब्रह्मपुरी (हरिद्वार), श्री रामलखन दास जी, अयोध्या, श्रीकृष्णाचार्य लक्ष्मणभवन अयोध्या, श्री राघवाचार्य जोआस, श्री अनन्ताचार्य वाढ, श्री रघुनन्दनाचार्य इलाहाबाद, श्री अनिल जी इलाहाबाद, श्री विश्वकसेन जी प्रयाग, श्री जगन्नाथाचार्य अयोध्या, श्री शुकदेवाचार्य अयोध्या, श्री उदयजी अकबरपुर, श्री पुरुषोत्तम जी (द्वय) वृन्दावन, श्री सन्तोषाचार्य जी झाँसी आदि सन्तों, महान्तों ने पधार कर परमाचार्य जी के चरणों में अपनी भक्तिभावना समर्पित करते हुए श्रीवैष्णव समाज को दर्शन दिए।

सरौती महायज्ञ की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि सभी भक्तगण स्वामी जी के सङ्कल्प की पूर्ति हेतु स्वयं की भावना से प्रेरित होते हुए तन, मन, धन से समर्पित हो गए। एक वैष्णव भक्त

सम्पूर्ण चीनी का व्यय-भार वहन कर लिया, तो दूसरे भक्त ने विद्युत् व्यवस्था को स्वयं के ऊपर ले लिया, किसी ने अपने क्षेत्र से आटा, तो किसी ने जलावन, किसी ने मसाला तो किसी भक्त ने अपने क्षेत्र से रिफाइन तेल की व्यवस्था सम्भाल ली। तात्पर्य यह है कि किसी को विशेषरूप से उत्साहित करने की आवश्यकता नहीं हुयी। परमाचार्य जी महाराज ने ही सभी को प्रेरित किया।

वस्तुत: सरौती का प्रतिष्ठा महायज्ञ अपने आप में अद्भुत रहा, इतने कम समय में निर्माण से लेकर सौन्दर्यीकरण तक के कार्य के साथ महायज्ञ की समुचित व्यवस्था आश्चर्यजनक ही है। यह कार्य अपने आप में कीर्तिमान स्वरूप हुआ है।

परमाचार्य जी महाराज की प्रतिमा की प्रतिष्ठा रूपी महायज्ञ को दो रूपों में देखा जा सकता है। पहला स्वामी जी महाराज द्वारा प्रदर्शित आध्यात्मिक पथ तथा दूसरा विकास। इस महानुष्ठान से दोनों कार्य एक साथ सम्पन्न हुए। यज्ञ के अवसर पर हजारों भक्तों ने श्रीवैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर स्वयं को प्रभु की शरणागति की तथा दर्जनों दम्पतियों ने सन्तान की कामना से हरिवंश कथा का श्रवण किया। यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि प्रत्येक यज्ञ में सन्तानेच्छुक भक्तों की संख्या बढ़ती जा रही है, इससे स्पष्टत: ज्ञात होता है कि स्वामी जी के यज्ञ में कथा श्रवण करने वाले भक्तों की मनोकामना भगवान पूर्ण कर रहे हैं। मुझे पूर्ण स्मरण है कि आज से करीब १० वर्ष पूर्व ऐसे भक्तों की संख्या ५-१० हुआ करती थी, जो उत्तरोत्तर वृद्धिगत होते हुए सरौती में अर्धशतक को स्पर्श कर गया। इसके पीछे भगवान की कृपा एवं स्वामी जी महाराज का आशीर्वाद ही कारण है।

महायज्ञ के पूर्व सरौती के विकास की बाढ़ आ गयी। छ:-सात मास पूर्व जो व्यक्ति सरौती गया होगा, उसे यह विश्वास ही नहीं होगा कि इतने अल्प समय में सरौती का काया-कल्प कैसे हो गया।

**स्थान के छत पर हनुमान जी**

स्वामी जी की प्रतिमा, जय-विजय तथा गरुड़ जी की प्राण प्रतिष्ठा के साथ यज्ञ का प्रथम चरण पूर्णता को प्राप्त हुआ, इसके साथ ही यज्ञ के द्वितीय चरण की पूर्णता अर्थात् तदीयाराधन (भण्डारा) का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। अपराह्न एक बजे से पूड़ी लड्डू एवं साग का महाप्रसाद (भण्डारा) जो प्रारम्भ हुआ वह ९ बजे रात्रि तक चलता रहा। एक बार में ३-४ हजार भक्तों को विशाल प्राङ्गण में बैठाकर सैकड़ों उत्साही युवकों द्वारा प्रसाद वितरण का कार्य अपने आप में सुन्दर दृश्य उपस्थित कर रहा था। वस्तुत: वे सभी युवक धन्यवाद के पात्र हैं। इसीलिए स्वामी जी महाराज ने अपने आशीर्वचन में उन युवकों को विशेष रूप से आशीर्वाद दिया था। सायं तीन बजे से सन्तों की विदाई होने लगी, वह भी सायं ७ बजे तक चली। शेष सन्तों से रात्रि विश्राम कर प्रात:गमन करने का आग्रह किया गया और तदनुसार १४.३.११ को सबों की विदाई हुयी।

यज्ञ की पूर्ण पूर्णाहुति सभी क्षेत्रों में प्रसाद वितरण के रूप में माना गया। अत: एक गाड़ी लेकर प्रत्येक स्थानों पर प्रसाद पहुँचाया गया।